ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 27 जुलाई 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 27 जुलाई 2025 से 02 अगस्त 2025

श्रावण शु. 03 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 30, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

डी.ए.वी. जगजीतपुर, हरिद्वार में 'दो पेड़ बच्चों के नाम'

गुरु पूर्णिमा का शुभावसर था और संयोगवश डीएवी प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली के प्रधान, परम श्रद्धेय पद्मश्री डॉ. पूनम सूरी जी भी हरिद्वार में उपस्थित थे, जिस कारण उनका विशेष स्नेह एवं आशीर्वाद विद्यालय को प्राप्त हुआ और इस वर्ष का हरेला पर्व डी.ए.वी., जगजीतपुर, हरिद्वार के लिए अविस्मरणीय बन गया।

डॉ. पूनम सूरी जी ने अपनी भार्या श्रीमती मणि सूरी जी के साथ विद्यालय प्रांगण में स्वर्ण चम्पा के 'दो पेड़ बच्चों के नाम' लगाए। उन्होंने अपना आशीर्वाद देते हुए कहा कि *"जैसे–जैसे इन पेड़ों की सुगंध वायुमण्डल को सुगंधित करेगी, उसी प्रकार डी.ए.वी., हरिद्वार के बच्चे विश्व में चहुँ ओर अपनी प्रतिभा की सुगंध बिखेरेंगे, ऐसी मेरी कामना है।"*

विद्यालय के उपाध्यक्ष एवं मैनेजर श्री जे.के. कपूर जी भी अपनी पत्नी के साथ उपस्थित रहे। उत्तर प्रदेश जोन–ए एवं उत्तराखण्ड जोन की क्षेत्रीय अधिकारी डॉ. अल्पना शर्मा भी उपस्थित रहीं।

विद्यालय के बच्चों ने उपस्थित अतिथियों को हरेला पर्व के बारे में विस्तार से बताते हुए विद्यालय प्रांगण में इस पर्व पर रोपे जाने वाले फलदार पेड़ों के बारे में जानकारी देते हुए उनके वानस्पतिक नामों से भी परिचित कराया।

प्रधानाचार्य मनोज कुमार कपिल ने प्रधान जी द्वारा रोपित पौधों की देखभाल करने का संकल्प लिया। उन्होंने माननीय डॉ. पूनम सूरी जी एवं उनकी पत्नी का विद्यालय में 'दो पेड़ बच्चों के नाम' लगा कर अपना विशिष्ट स्नेह देने के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया।

डी.ए.वी. कडरू (राँची) में वन महोत्सव का आयोजन

डी.ए.वी. कपिलदेव पब्लिक स्कूल कडरू, राँची में वन महोत्सव का आयोजन किया गया। इस अवसर पर बच्चों ने नृत्य नाटिका और कविता के माध्यम से वन के महत्व को दिखाया और पर्यावरण की रक्षा करने का संदेश दिया।

झारखंड जोन बी के सहायक क्षेत्रीय पदाधिकारी श्री एम के सिन्हा ने कहा कि "प्रकृति की रक्षा करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है।" उन्होंने वन की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि "हर व्यक्ति को वर्ष में कम से कम एक पेड़ अवश्य लगाना चाहिए।"

श्री सिन्हा ने कहा कि डीएवी वन

बच्चों ने बताया कि आज ऑक्सीजन का कितना महत्व है। पेड़ हमें निःशुल्क ऑक्सीजन देते हैं। हमें पीपल, बरगद जैसे पेड़ों की निरंतर रक्षा करनी चाहिए।

विद्यालय के प्राचार्य सह डी.ए.वी. और पर्यावरण की रक्षा करने के लिए कृतसंकल्प है। आर्यरत्न, डॉ पूनम सूरी जी ने प्रकृति की रक्षा निरंतर पर ज़ोर दिया है।

इस मौके पर शिक्षक–शिक्षिकाएँ भी मौजूद थे।

डी.ए.वी. सैक्टर 3 कुरुक्षेत्र में श्रावण मास का पहला यज्ञ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–3 कुरुक्षेत्र में श्रावण मास के आरंभ होने के उपलक्ष्य में हवन यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें कक्षा दसवीं के छात्रों

ने हवन में आहुति डाली। इस अवसर पर स्कूल प्राचार्या श्रीमती गीतिका जसूजा ने सभी छात्रों को श्रावण मास का आर्यसमाज और डी.ए.वी. संस्कृति के संदर्भ में महत्व के बारे में बताते हुए वेदों के महत्व और शिक्षा में उनके योगदान पर ध्यान केंद्रित किया।

धर्म शिक्षक श्री ओमवीर शास्त्री ने भी छात्रों को जानकारी देते हुए कहा कि आर्यसमाज में श्रावण पर्व का बहुत महत्व है। इसे वेदों को सुनने और समझने के महीने के रूप में मनाया जाता है। यह पर्व आध्यात्मिक, वैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इस दौरान यज्ञ–हवन किए जाते हैं और वेदों का पाठ किया जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से श्रावण मास में वर्षा ऋतु होती है, जो प्रकृति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आर्यसमाज वेदों के माध्यम से प्रकृति और उसके नियमों को समझने पर बल देता है।

इसके साथ ही सामाजिक दृष्टि से श्रावण पर्व, विशेष रूप से रक्षाबंधन, भाई–बहन के प्रेम और सुरक्षा के बंधन का प्रतीक है। आर्यसमाज इस पर्व को सामाजिक संबंधों को मजबूत करने और प्रेम तथा सद्भाव फैलाने के अवसर के रूप में देखता है।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 27 जुलाई 2025 से 02 अगस्त 2025

वाणी के सलिल में स्नान

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैः, भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मौत मृत्युः, अन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः।।

अथर्व 17.1.28

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **आदित्यः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**अहं**) मैं (**ऋतेन**) सत्य से (**च**) और (**सर्वैः**) सब (**ऋतुभिः**) ऋतुओं से (**गुप्तः**) रक्षितज [**होऊँ**], (**भूतेन**) अतीत से (**भव्येन च**) और भविष्यत् से (**गुप्तः**) रक्षित [**होऊँ**]। (**पाप्मा**) पाप (**मा**) मुझे (**मा**) मत (**प्रापत्**) प्राप्त हो, (**मा उत**) **न ही** (**मृत्युः**) मृत्यु [**प्राप्त हो**]। (**अहं**) मैं (**वाचः**) वेदवाणी के (**सलिलेन**) सलिल से, ज्ञानामृत से (**अन्तः दधे**) [स्वंय को] आच्छादित कर देता हूँ।

● मैं अ–सुरक्षा के सन्त्रास से व्याप्त इस जगत् में सर्वात्मना रक्षित रहना चाहता हूँ। पर रक्षा का उपाय क्या है? सहस्त्रों सैनिकों को अपने चारों ओर सन्नद्व करके भी मैं वैसी रक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, जैसी स्वयं नैतिक नियमों में बंधकर तथा आत्म–बल को जगाकर पा सकता हूँ। सर्वप्रथम मैं 'सत्य' से रक्षित होऊँ। मनुष्य बहुधा अपनी रक्षा के लिए 'असत्य' का अवलम्बन करता है। वह सोचता है कि असत्य कहकर मैं अपराध के दण्ड से बच जाऊँगा। पर असत्य छिपता नहीं। अपराधी को अपराध का दण्ड तो मिलता ही है, असत्य–भाषण का अतिरिक्त दण्ड भोगना पड़ता है। इसके विपरीत सत्य बोलकर अपना अपराध स्वीकार कर लेने पर वह क्षमा का पात्र हो जाता है। मैं ऋतुओं से भी रक्षित होऊँ। ग्रीष्म, बर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, छहों ऋतुएँ व्यवस्थित रूप से आकर प्रकृति के कार्य–कलाप का चारुता के साथ निर्वाह करती हैं। इन ऋतुओं से शिक्षा लेकर मैं भी अपने कार्य को यथासमय करने की आदत डालूँ, तो मैं भी रक्षित रह सकता हूँ। यदि मैं अपने राष्ट्र के उज्ज्वल अतीत से शिक्षा लेकर वर्तमान को उज्ज्वल करने का व्रत लूँ, तो अतीत भी मेरा रक्षक बन सकता है। उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करके उसे मूर्तरूप देने के प्रयास द्वारा 'भव्य' को भी मैं अपना रक्षक बना सकता हूँ।

पाप मुझे न प्राप्त हों। यदि मैं दृढ़ता धारण लूँ कि किसी भी अवस्था में पाप के वशीभूत नहीं होऊँगा, तो पाप सदा मुझसे दूर रहेगा। परिणामतः नैतिक दृष्टि से मैं सुरक्षित रहूँगा। मृत्यु भी मुझे न प्राप्त हो। यों तो जिसने जन्म लिया है वह मृत्यु से ग्रस्त होता ही है, किन्तु जब भी चाहे अकाल मृत्यु आकर हमें ग्रस ले तो हम सर्वथा असुरक्षित रहते हैं। अतः सुरक्षा के लिए अकाल मृत्यु से बचना आवश्यक है। अन्त में आत्मरक्षार्थ में वाणी के सलिल से, वेदवाणी के ज्ञानामृत से, स्वयं को अच्छादित करता हूँ। जैसे शीतल–पवित्र जल का पान और उसमें स्नान श्रम और सन्ताप को मिटाकर हमारी रक्षा करता है, वैसे ही वेदवाणी के पवित्र ज्ञान–सलिल में स्नान भी हमारे अज्ञान–मूलक दुःख–द्वन्द को हरकर हमारा रक्षक बनता है। अतः मैं वेदवाणी के निर्मल ज्ञान–सरोवर में डूबकी लगाता हूँ और सब भीतियों से रहित, सब अविद्याओं से मुक्त तथा सब कर्त्तव्य–बोधों से स्फूर्ति पाकर पूर्ण सुरक्षित हो जाता हूँ।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

बात चल रही थी साधक की प्रभु प्रेम में उत्पन्न व्याकुलता की और इस व्याकुलता के परिणाम स्वरूप चित पिघलने और आनन्द के आसुओं से अन्तकरण के शुद्ध होने और ऐसी स्थिति में उस प्रियतम की सत्ता के आभास की।

स्वामी जी ने इस भक्त को एक माली से मुखातिब कर फूलों के रूप–रंग, सौरभ पराग में उसी प्यारे का रूप देखने का संदेश दिया।

संसार के परिवर्तनशील स्वरूप का दिग्दर्शन कराया।

साधक की उस अवस्था का भी ज़िक्र किया जहाँ प्रभुकृपा न होने पर वह उस परमपिता के करुणा–कोष को कुरक कराने का अल्टीमेटम देता है। स्वामी जी ने कहा इसकी आवश्यकता नहीं। बस अपना हृदय भगवान् के अर्पण कर दो। हृदय में प्यारे प्रभु की ज्योति जले जिसमें अन्य सारा कूड़ा करकट भस्म हो जाए।

स्वामी जी ने अब भक्ति के प्रकार बताने आरम्भ किए–तामसी, राजसी और सात्विक भक्ति। इन तीनों के गुण भी बताए।

सात्विक भक्ति परा–भक्ति तक पहुँचाती है। पराविद्या और पराभक्ति से नित्य ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

गीता में वर्णित–आर्त्त, जिज्ञासु, अर्षार्थी और ज्ञानी चार प्रकार के भक्तों का ज़िक्र किया।

इसके बाद साधना रूपा और प्रेमलक्षणा भक्ति की चर्चा की। प्रेम लक्षणा में मुक्ति की इच्छा नहीं भक्त विरह अग्नि में गीली लकड़ी की तरह जलना चाहता है। साधना रूपा भक्ति में भक्त ज्ञानवान होकर भक्ति में प्रवृत्त होता है। ..... **अब आगे**

प्रभु–दर्शन के मन्दिर

अब एक भक्ति और भी है जिसमें भक्त भगवान् की भक्ति करते–करते जब प्रभु–प्रेम का आस्वाद लेने लगता है और उसे अपने चारों ओर अपने प्यारे प्रभु ही की महिमा दृष्टिगोचर होने लगती है, साथ ही वह यह भी प्रत्यक्ष देखता है कि प्यारे के दर्शन मानव हृदय में हो रहे हैं, वह तब हरएक मनुष्य को मानव–शरीर नहीं समझता अपितु प्रभुदर्शन करने का मन्दिर समझता है। कारण यह है कि मानव–शरीर ही ब्रह्मपुरी है। यहीं पर भक्त और भगवान् दोनों इकट्ठे रहते हैं, अज्ञान तथा माया का एक आवरण ही बीच में है। उस पर्दे को हटाया और प्रेमी तथा प्रियतम दोनों आमने–सामने हो जाते हैं। ऐसा मिलाप मानव–देह में ही होता है। यह अटल सत्य अनुभव करके भक्त अब किसी भी मनुष्य से घृणा नहीं करता, अपितु उसे प्यार करने लगता है। भक्त हर एक मनुष्य को प्रभु का मन्दिर जानकर उसके प्रति श्रद्धा, प्रेम, भक्ति की भावना करता है। इस प्रभु–मन्दिर में यदि किसी प्रकार की कोई त्रुटि है तो उसे दूर करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। पूरा तप, पूरा प्रेम, पूरी भक्ति से भक्त का हृदय अपने लिए दुःखित नहीं होता, प्राणिमात्र के लिए चिन्तित होता है। उसकी भक्ति मुक्ति के लिए नहीं, अपितु दुःखी प्राणियों के दुःख को दूर करने के लिए होती है। वह अपने प्यारे से सामर्थ्य, शक्ति, बल, बुद्धि की याचना करता है तो इसलिए कि पीड़ित जीवों की पीड़ा को दूर कर सके। कुछ भक्त राज्य, धन तथा संसारी वैभव के लिए भक्ति करते हैं, कुछ स्वर्ग में पहुँचने के लिए, कुछ इन सबसे ऊपर उठकर मोक्ष में जाने के लिए। इन तीन प्रकार के भक्तों से निराले चौथे प्रकार के भक्त वे हैं जो न राज्य, न स्वर्ग, न मुक्ति चाहते हैं। वे चाहते क्या हैं?

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

'मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग भी नहीं, मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ – दुःख से सन्तप्त प्राणियों के क्लेश का नाश।'

राजा रन्तिदेव की भक्ति

राजा रन्तिदेव के शब्दों में :

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्ट–
सिद्धियुक्तामपुनर्भवां वा।
आर्त्तिप्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः
स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।

'प्रभो सर्वेश–सर्वाधार जगदीश्वर ! मैं आपसे परमगति नहीं चाहता। अष्टसिद्धि या समस्त ऋद्धि भी मुझे नहीं चाहिएँ। हाँ, आप मुझे मुक्त करें, इसकी मुझे कोई कामना नहीं। आप मेरा निवास प्राणियों के हृदय में कर दें, जहाँ रहकर मैं उनके सब दुःख भोग लिया करुँ, जिससे सब प्राणी दुःखहीन हो जाएँ।'

कितनी ऊँची भावना है यह ! यह भक्ति की पराकाष्ठा है और निस्सन्देह सर्वोच्च भक्ति यही है। एक कवि की यह प्रार्थना कितनी मार्मिक है :

देव ! मुझे ही सब दुख दे दे,
जग–जन सारे सुख पावें।
जो औरों के कलुष–भोग हों,
इस जन के ऊपर आवें।।

एक और भक्त इसी भाव को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रकट करता है :

सफल जीवन हो, वर परमात्मन् !
तुमसे जो यह पाऊँ,
पराई आग में कूदूँ,
पराई मौत मर जाऊँ।
किसी के हित की खातिर होवें
गर इस जिस्म के टुकड़े,
खुशी से खेलते हँसते,
मैं अपने तन को कटवाऊँ।।

क्या ऐसे भक्तों को भगवान् दुःख सागर में पड़े रहने देता है ? नहीं। गीता में स्पष्ट कहा है :

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।

'जो सब प्राणियों के हित में लगे रहते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।'

भारत का इतिहास ऐसे भक्तों की प्रेम गाथाओं से भरा पड़ा है। सनातन वैदिक संस्कृति में यह एक ऐसी उच्चकोटि की भावना है, जिसकी उपमा और कहीं नहीं मिलती। दधीचि, भरत, भगीरथ, शिवि, रन्तिदेव, अम्बरीष, जनक, भीष्म, सती सावित्री, दुर्गा, लक्ष्मीबाई, पद्मिनी, श्री शङ्कराचार्य, कुमारिल भट्ट, गुरु गोविन्दसिंह, समर्थ रामदास, वीर वैरागी, महर्षि दयानन्द और कितने ही ऐसे भक्त हुए हैं, जिन्होंने मुक्ति की अपेक्षा जनता के कष्ट दूर करने और प्राणियों का सुधार और उद्धार करने के लिए अपने आपको कष्ट और तप की भट्टी में डाला।

स्वामी दयानन्द घोर तप करके प्रभु भक्ति में पूर्ण होकर जब दुःखी, पीड़ित जनता को सन्मार्ग दिखलाने के लिए स्थान–स्थान पर भ्रमण करने लगे और अपनों ही से गालियाँ, अपमान लेने लगे तो उनके मित्र कैलाश आश्रम ने उनसे कहा– "दयानन्द ! किस टण्टे में पड़ गए हो ? आप तो योग तथा भक्ति की उस भूमि पर जा चढ़े थे, जहाँ आप जीवन मुक्त हो जाते !" तब महर्षि ने कहा– "कैलाश ! इन दुःखी जनों को दुःख सागर में डूबा देखकर मैं अकेला मोक्ष नहीं चाहता। मेरा तो यही मोक्ष है कि मैं संसारी जीवों को सन्मार्ग पर ला सकूँ।"

पहले प्रभु की कृपा प्राप्त करो

इन भक्तों की गाथाएँ सुनते हुए एक आवश्यक बात सदा सामने रखना और वह यह कि ऐसा पद ग्रहण करने से पूर्व घोर तप, पूरी भक्ति और पूरी प्रभुकृपा प्राप्त करने की अत्यन्त आवश्यकता है। **इन सब देवताओं तथा देवियों ने ज्ञान, वैराग्य, अभ्यास, भक्ति द्वारा वह स्थिति प्राप्त की, जिससे प्रभु प्रसन्न हो गए, भगवान् की कृपा के पात्र बन गए और जब वर मिलने का समय आया तो इन भक्तों ने मोक्ष की ओर जाने की अपेक्षा पीड़ित संसार का उपकार करना ही अधिक प्रिय समझा।**

अपने–आपको पहचाने बिना और फिर भगवान् के दर्शन पाए बिना जो लोक–सेवा, देश–सेवा या परोपकार के काम में पड़ जाते हैं, वे दूसरों का दुःख तो क्या दूर करेंगे, स्वयं ही दुःखी हो जाते हैं। सूर्य दूसरों को ज्योति (प्रकाश, गर्मी) इसीलिए देता है कि वह स्वयं ज्योति, प्रकाश और गर्मी का पुञ्ज है। भला, बुझा हुआ दीपक किसी दूसरे बुझे दीपक को कैसे प्रकाशित कर सकता है ? पहले प्रभु–भक्ति द्वारा अपने अन्दर सामर्थ्य ले आएँ, तभी इस उच्च कोटि की भक्ति के अधिकारी बन सकेंगे। **सामाजिक उन्नति या परोपकार से पहले आत्मिक उन्नति का आदेश सबने दिया है और महर्षि स्वामी दयानन्द ने विशेष रूप से दिया है।** स्वामी जी ने तो राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करनेवालों, विधान–सभाओं, राज्य परिषदों के मन्त्रियों, प्रधान–मन्त्रियों, सदस्यों, राज्य–कर्मचारियों, सबको योगाभ्यास नित्यप्रति करने की आज्ञा दी है। उन्हें इस आवश्यक बात का व्यक्तिगत अनुभव भी था कि प्रभुभक्ति से आत्मदर्शन किए बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

जब संवत् 1914 (सन् 1857) में स्वतन्त्रता का पहला युद्ध छिड़ा तो स्वामी जी उसकी सफलता देखकर मिर्जापुर तथा काशी होते हुए मध्यप्रदेश के जंगलों में जा निकले। तीन–चार वर्ष नर्मदा नदी के तट पर रहने वाले योगियों की संगति करते रहे, फिर बाद में संवत् 1970 में गुरुवर स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचे। वैशाख 1920 तक गुरु से वेद–शिक्षा प्राप्त करते रहे। दक्षिणा देकर फिर प्रचार–हित निकल खड़े हुए। संवत् 1924 में हरिद्वार का कुम्भ था। वहाँ पहुँचकर अपनी पताका गाड़ी, परन्तु देखा कि उनके सत्य कथन की ओर कोई ध्यान नहीं देता। समझ गए कि अभी तपस्या में कोई त्रुटि है। तब एक दिन जब महाराज व्याख्यान दे रहे थे तो नेत्र जलपूर्ण हो गए, कण्ठ से आर्त्तनाद निकल पड़ा और **"सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा"** कहकर अपने सारे पुस्तक, बर्तन, पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी वस्त्र, दुशाले, नकदी, जो कुछ भी पल्ले था, सब का सब वहीं बाँट दिया; केवल एक कौपीन धारण करके ऋषिकेश पहुँचे और गंगा के किनारे–किनारे निकल खड़े हुए और सात वर्ष घोर तप करके, प्रभुकृपा प्राप्त की; समाधि–अवस्था में पहुँचकर आत्म–दर्शन पाए। तब गंगा–रज ही उनका बिस्तर था; गंगा के पत्थर ही सिरहाने का काम देते थे; पर्णकुटी या आकाश ही छत होता था। जब देखा कि भगवान् ने आशीर्वाद दे दिया है, वे चाहते तो तब मुक्त हो सकते थे, परन्तु संसार के दुःखी जनों का हित उन्हें कर्म–क्षेत्र में ले आया। अब उनके हृदय की जोत जग चुकी थी। आते ही स्वामी जी को सफलता मिलने लगी। इस व्यक्तिगत अनुभव के कारण ही महाराज ने सामाजिक उन्नति से पूर्व आत्मिक उन्नति करने का आदेश दिया है।

जिस भक्ति का ऊपर वर्णन हो रहा था, इसका स्वरूप तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक आत्मदर्शन प्राप्त नहीं होते। परमात्मा की कृपा–दृष्टि के बिना आत्म–दर्शन असम्भव है।

शुकदेव जी ने यथार्थ कहा है :

अकामः सर्वकामी वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजते पुरुषं परम्।।

योगवा. स्क. 2.3.10.13

'अकाम हो, सकाम हो, मोक्ष की कामनावाला हो, बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि तीव्र भक्तियोग द्वारा उस परम–पुरुष का ही भजन करे।'

एतावानेन यजतामहि निःश्रेयसोदयः।
भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतिः।
14।।

'साधकों के लिए परम कल्याण की बात यही है कि उनकी भगवान् में अचल भक्ति हो और भगवान् के भक्तों का उन्हें संग मिले।'

मेरी चाह

भक्ति के और भी कितने ही रूप हैं, सबका वर्णन यहाँ कठिन है। हाँ, एक और रूप का संकेत लाभदायक होगा।

यह भक्ति वह है जिसमें भक्त न मुक्ति की और न ही दुःखी जनों के दुःख नाश की अभिलाषा रखता है, अपितु अपनी और संसारी जीवों की बागडोर भगवान् ही के अर्पण कर देता है। पर बिना इच्छा के तो कुछ होता नहीं। एक भक्त जब यह कहता है **'प्रभु, तेरी इच्छा पूर्ण हो'** तो यह भी तो एक इच्छा ही है। ऐसे भक्त की भी एक इच्छा अवश्य होती है और वह यह है :

प्रभु ! आपकी मैं हूँ शरण,
निज चरण–सेवक कीजिए।
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता,
जो आप चाहें दीजिए।।
सिर आँख से मंजूर है,
सुख दीजिए दुःख दीजिए।
जो होय इच्छा कीजिए,
मत दूर दर से कीजिए।।

ऐसे भक्त की यह अभिलाषा अवश्य होती है कि भगवान् सदा मुझे अपने द्वार की चौखट पर पड़ा रहने दे। उसी प्रभु के द्वार पर पड़े–पड़े वर्षों बीत जाएँ या जन्म, भक्त उसी की प्रेमभक्ति में मग्न कभी रो दे, कभी हँस दे, कभी प्रभु प्रेम के गीत गा दे, कभी चिन्तित होकर काँप उठे कि कहीं इस प्रभु–मिलाप की वाटिका में वियोग की आँधी न आ जाए ! ऐसी अवस्था में भक्त या साधक का चित्त भक्तिरस–सुधापान के योग्य हो जाता है, अन्य सारी वासनाएँ धुल जाती हैं। हृदय निर्मल होकर अब सर्वश्रेष्ठ भक्ति–सागर में सर्वथा डूब जाने के लिए लालायित हो जाता है। उस भक्त के अब प्राण नाच उठते हैं। उसे प्यारे प्रियतम का आशीर्वाद मिलता–सा अनुभव होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् की ओर से यह आदेश पहुँचा है–**'भक्त ! कहो, क्या चाहते हो ? जो इच्छा हो वैसा ही होगा।'** यह भक्त उत्तर में तब कुछ कहना चाहता है परन्तु असिक्त कण्ठ ने स्वर अस्पष्ट कर दिया है। प्रेम से भरपूर पवित्र हृदय ही ने आतुरता के साथ कहा :

मेरी चाही करन की, जो है तुम्हरी चाह।
तो तुम्हरी चाही करौं, यह है मेरी चाह।।
मेरी चाही हो वही, जो हो तुम्हरी चाह।
तुम्हरी अनचाही कभी, मत हो मेरी चाह।।
तुम्हरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख नादान।।

यह भावना प्रभुकृपा प्राप्त करने का अमोघ साधन है। भक्तितत्त्व से तत्वज्ञान का अधिकारी बनने के लिए प्रेमभरा पवित्र हृदय, अत्यन्त सूक्ष्म कुशाग्र बुद्धि प्राप्त हो जाती है।

क्रमशः

जो आर्य नहीं, वो आर्य समाजी क्यों?

● रामनिवास 'गुणग्राहक'

{दो अंक में समाप्य}

जब देश और विश्व के आर्य कहलाने वाले सभी आबाल वृद्ध पूरे हर्षोल्लास और उत्साह के साथ आर्य समाज का 150 वाँ स्थापना वर्ष मना रहे हो, तब ऐसे वातावरण में–'जो आर्य नहीं, वो आर्य समाजी क्यों?'' जैसा रंग में भंग डालने वाला कड़वा प्रश्न उठाना उचित भी है या नहीं– मेरे लिए यह निर्णय करना बहुत कठिन व पीड़ादायक रहा। आर्य शब्द–**'ऋगतौ'** धातु से निष्पन्न होता है। **'गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति'** के अनुसार गति के तीन अर्थ है– ज्ञान, गमन और प्राप्ति। हम सरल शब्दों में कह सकते हैं कि भाषा शास्त्र के अनुसार आर्य वह है, जो ज्ञान सम्पन्न हो, प्राप्त ज्ञान के अनुसार गमन अर्थात् आचरण करता हो और जो काम हाथ में लें, उसे पूर्ण किए बिना अधूरा न छोड़े। वेद और वैदिक साहित्य के अनुसार आर्यों के लिए कुछ कर्त्तव्य कर्मों और कुछ व्यवस्थाओं का पालन अनिवार्य माना है। वह चाहे पंच महायज्ञों के रूप में हों या वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में। इन सबके साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लुप्त हो चुकी वैदिक जीवन शैली के आवश्यक तत्त्वों को सरल और सर्वजन सुलभ शैली में आर्य समाज के दस नियमों के माध्यम से पूर्ण बनाने का पुण्य प्रयास किया। सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करने की प्रेरणा दी। अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि करते रहने का आदेश भी दिया। सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझने की विवेक–बुद्धि जगाई। सामाजिक सर्वहितकारी नियमों के पालने की बाध्यता और स्वहितकारी नियमों के पालने में छूट देकर ऋषिवर ने हमें समझाया कि लोकहित ही सच्चा स्वार्थ है। ऋषि ने आदेश दिया कि आर्यजन सब काम धर्म के अनुसार ही करें, सत्य–असत्य का विचार करके ही करें। ऋषि दयानन्द ने अपने अनुगामी आर्य जनों के सामने परमपिता परमात्मा के सत्य स्वरूप को प्रकट करते हुए आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के सच्चिदानन्द आदि लगभग 20–22 गुणों का वर्णन करते हुए उसी की उपासना करने का उदेश दिया। इतना ही नहीं, पौराणिकता के प्रपंच में पड़े देशवासियों में से उनके सच्चे अनुगामी बनकर कुछ भाग्यशाली स्त्री–पुरुष आर्य बन सकें, इसके लिए ऋषि ने **वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक घोषित करते हुए वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम् धर्म बताया!**

हम आर्य कहलाने वालों के जीवन में कितना आर्यत्त्व है? आर्य पुरुष के कितने गुण और कर्म हैं? इसका निर्णय हम स्वयं ही करें तो उचित रहेगा। क्या ऋधातु उपरोक्त अर्थ के अनुसार हम स्वयं को ज्ञान–सम्पन्न कहने की स्थिति में हैं? ज्ञानवान बनने के लिए ही ऋषिवर ने–वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम् धर्म कहा था। कितने भाग्यवान स्त्री–पुरुष हैं, जो अपने, इस परम् धर्म के पालन के प्रति सजग, सावचेत व प्रयत्नशील हैं? यदि वेद के पढ़ने–पढ़ाने और सुनने–सुनाने की प्रवृत्ति मेरे जीवन में, मेरे परिवार में और मेरे आर्यसमाज में नहीं है तो क्या मुझे सच्चे अर्थों में स्वयं को आर्य कहने का अधिकार है? अगर निष्पक्ष भाव और न्याय दृष्टि से मैं स्वयं को सच्चा आर्य कहने की स्थिति में ही नहीं हूँ तो क्या मुझे मंत्री व प्रधान आदि बनने का अधिकार है? क्या उपदेशक, प्रचारक व पुरोहित बनकर धन–सम्मान पाने का अधिकार है?

यह तो हमने केवल एक ही कसौटी पर स्वयं को परखने का प्रयास किया है। महर्षि दयानन्द ने वेद शास्त्रानुमोदित आर्यों के लिए जो पाँच महायज्ञों के नित्य अनुष्ठान का आदेश दिया है, क्या हम उनका पालन करते हैं? अपने स्वयं के जीवन–सुधार के लिए ब्रह्मयज्ञ–संध्या, स्वाध्याय तक न करने वाले, अपने परिवार का भला करने के लिए नित्य या साप्ताहिक रूप से देवयज्ञ अर्थात् हवन तक न कर पाने वाले किस मुँह से और किस आधार पर स्वयं को आर्य कह सकेंगे? वर्णाश्रम धर्म की बात करें तो आर्य कहलाने वाले यदि संध्या, स्वाध्याय व यज्ञ को जीवन का अंग न बना सके हों, उन्हें महर्षि मनु के विधानानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में तो गिन नहीं सकते। शूद्र वर्ण में गिने जाने के लिए वो स्वयं कभी तैयार न होंगे। उन्हें वर्णशंकर भी कहें तो और भी अनुचित होगा। यह तो धर्म संकट खड़ा हो गया। हे आर्य कहलाने वालो! सोचकर तो देखो, कि सत्य सनातन वैदिक धर्म की दृष्टि से हमारी व्यक्तिगत व सामाजिक पहचान क्या है?

आश्रम व्यवस्था की दृष्टि से भी हमारी स्थिति सन्तोष जनक नहीं कही जा सकती। ब्रह्मचर्याश्रम के लिए हम अपना बचाव कर सकते हैं कि वह तो माता–पिता के अधीन था, मगर क्या हम स्व–सन्तान के प्रति सजग हैं ? यदि नहीं हैं तो स्वयं को निर्दोष मान लेना पूर्णतः सच नहीं होगा। गृहस्थाश्रम के वैदिक आदर्श महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि में विवाह के बाद के पृष्ठों में दे रखे हैं। उनके अनुसार गृहस्थाश्रम का पालन करने वाले स्वयं को वैदिक गृहस्थ कह सकते हैं, मगर यह साहस भी विरले ही गृहस्थ दिखा सकेंगे। वानप्रस्थी व संन्यासी के रूप में विचरण करने वाले महाभाग महात्मा कहीं एकान्तवास में तप साधना के साथ संयम, सदाचार व लोकसेवा से युक्त तथा तीन ऐषणा मुक्त जीवन जी रहे हैं तो वे निश्चित रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। देखना यह है कि ऐसे मानवता के महाधन कहे जा सकने वाले हैं कितने ? सबसे बड़ा प्रश्न यह भी है कि ऐसे वानप्रस्थी–संन्यासी आर्य तो कहे जा सकते हैं, आर्यसमाजी नहीं कहे जा सकते क्योंकि शास्त्र मर्यादानुसार वानप्रस्थी लोक व्यवस्थाओं से ऊपर उठकर तप साधन, संयम का स्वनियन्त्रित एकान्त जीवन जीता है तथा संन्यासी भी सर्वतन्त्र स्वतंत्र विचरण करता हुआ जन–जन को वेदोपदेश सुनाता है। आर्यसमाजी चाहें तो उनसे विनीत भाव से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं, मगर उन्हें आर्यसमाज का अंग नहीं कहा जा सकता!

अब रही आर्य समाज के नियमों के पालन की बात, जिनका कि सांकेतिक दिग्दर्शन प्रारम्भ में किया जा चुका है। ये दस नियम तो हैं ही आर्यसमाज से जुड़े हुए लोगों के लिए। आर्यसमाज से जुड़े हुए स्त्री–पुरुषों की बात करें तो मूलरूप से इन्हें तीन वर्गों में रख सकते हैं। **प्रथम** आर्य सिद्धान्तों, वैदिक जीवन–मूल्यों पर विश्वास करने वाले गृहस्थ जन, जो आर्यसमाज के सदस्य के रूप में जाने जाते हैं। उनके जीवन और व्यवहार के प्राण–पोषक हैं ये आर्य समाज के दस नियम। उनके आर्य होने की कसौटी हैं– ज्ञान गमन और प्राप्ति जैसे आर्योचित सद्गुण। वर्णाश्रम–धर्म उनके जीवन में ऐसे रचे–बसे हों कि शेष जन इन वर्ण–आश्रम के कर्त्तव्य कर्मों को स्वीकारने के लिए लालायित हो उठे। उन्हीं वर्ण–आश्रम धर्मों के पूरक–पोषक तत्व इन दस नियमों से मिलते हैं। हे आर्य कहलाने वालो! अगर आपके मन–मस्तिष्क में परमात्मा और उसकी वेदवाणी के लिए थोड़ा सा भी प्रेम–अनुराग व लगाव है,आपके हृदय में वेदज्ञान वेदविद्या के लिए थोड़ी–सी भी श्रद्धा है तो उसे टटोलकर देखो और ध्यान से सुनो तो वहाँ से निरन्तर एक स्वर निकल रहा है कि आर्यो! मुझे जीवन दो! मत भूलो कि हमारे परम् पिता ने हमारे स्वभाव में ही सत्य के प्रति श्रद्धा और असत्य के प्रति अश्रद्धा के भाव दे रखे हैं। यजुर्वेद में कहा है.

दृष्ट्वा रूपे अकरोत सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धां अनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।

(यजु.)

उस प्रजापति जगदीश्वर को सच्चे हृदय से नित्य धन्यवाद करते रहो कि उस पतितपावन प्रभु ने हमें सत्य के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा और असत्य के प्रति स्वाभाविक अश्रद्धा के भाव देकर ही संसार में उत्पन्न किया है। हम दयालु देव की दया का गला घोंट कर अपना ही अकल्याण कर रहे हैं, अपने को अपने ही हाथों हम पाप–ताप की भट्टी में झौंक रहे हैं। अगर हम अपने हृदय में बैठी हुई सत्य के प्रति श्रद्धा का सम्मान और सदुपयोग करके उसे सजीव और सशक्त नहीं कर सकते तो संसार की कोई शिक्षा, कोई सत्संग, सदुपदेश, कोई सीख–समझ हमारा कल्याण नहीं कर सकती। जिस देव दयानन्द ने ईश्वरीय वेदविद्या को हम तक पहुँचाने के लिए अपना तन–मन तिल–तिल जला डाला। कई बार विष पीकर भी निरन्तर हमें वेद–अमृत पिलाता रहा। आर्यो ! जिन्होंने एक–दो बार ऋषि दयानन्द का जीवन–चरित्र मनोयोग से पढ़ा है, वे जानते हैं कि निरन्तर अपमानित होते हुए, ईंट–पत्थरों के प्रहार सहते हुए, लाठी–तलवारों के वार भी सहन करते हुए, हर झंझावात से जूझते हुए उस ऋषि ने वेदविद्या को हम तक पहुँचाया है। ऋषि के जीवन–चरित्र को पढ़ने वाले जानते हैं कि दयानन्द एक ऐसे महामानव थे जिसने अपनी सुख–सुविधा के लिए कुछ भी पाने का कभी कोई प्रयास नहीं किया। दयानन्द एक ऐसा महामानव था, जिसने लोक–कल्याण के पथ पर चलते हुए उनमें आने वाली किसी बाधा, किसी प्रकार के कष्ट–संकट, किसी प्रकार की आपत्ति से बचने के लिए, सुरक्षा पाने के लिए अथवा अहित करने वालों से बदला लेने के लिए

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

बड़ा कौन ?

● डॉ. भवानी लाल भारतीय

मानवदेह में कौन शक्ति श्रेष्ठ है, यही इस आख्यायिका में बताया गया। एक बार शरीरस्थ इन्द्रियों में इस बात को लेकर विवाद हो गया कि उनमें कौन बड़ी है, कौन श्रेष्ठ है ? एक–दूसरे से स्वयं को बड़ा बताने का उनका प्रयास चलता रहा। इन्द्रियों के अतिरिक्त प्राण का भी इस विवाद में हिस्सा था। ये सभी देव अर्थात् इन्द्रियाँ और प्राण इस विवाद का निपटारा कराने के लिए प्रजापति के पास पहुँचे और बोले, "आप इस बात का फैसला करें कि हम इन्द्रियों और प्राण में कौन सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोत्कृष्ट है ?" प्रजापति ने कहा, "तुममें से जिसके शरीर से निकल जाने पर यह शरीर निष्क्रिय, निष्प्राण तथा मृत–तुल्य दिखाई पड़े, उसे ही श्रेष्ठ मानना पड़ेगा।"

यह सुनकर सर्वप्रथम वाणी देह से निकल गई। वह वर्ष–भर बाहर रहकर पुनः आई और अवशिष्ट इन्द्रियों से पूछा, "तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहीं ?" उत्तर में इन्द्रियों ने कहा, "जिस प्रकार गूँगा आदमी वाक्शक्ति के बिना भी जीवन धारण करता है, उसी प्रकार तुम्हारे अभाव में भी इस शरीर की स्थिति रही। यह शरीर नाक से साँस लेता रहा, आँखों से देखता रहा, कानों से सुनता रहा, मन से विचार करता रहा। इसके सभी कार्य यथाक्रम चलते रहे, मात्र बोलने की शक्ति ही नहीं थी।" इसे सुनकर वाणी ने अनुभव कर लिया कि मेरे बिना यदि शरीर जीवित रहता है तो मेरा श्रेष्ठत्व सिद्ध नहीं हुआ।

इसके पश्चात् नेत्रशक्ति शरीर से चली गई। वर्ष भर बाहर रहकर जब वह पुनः लौटी तो उसे भी यही बताया गया, "नेत्रों के अभाव में एक अंधे के तुल्य इस शरीर का सब कामकाज यथावत् चलता रहा। नेत्रों से भिन्न श्वास–प्रक्रिया, श्रवणेन्द्रिय, वाणी तथा मन सभी अपना–अपना काम करते रहे, अतः शरीर को कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई।"

अब मन भी वर्ष–भर के लिए शरीर से पृथक् हो गया। तथापि शरीर के चलने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इतना अवश्य हुआ कि इस बीच सोचने–विचारने, संकल्प–विकल्प आदि की मानसिक क्रियाएँ अवरुद्ध रहीं। दुनिया में ऐसे भी तो लोग होते ही हैं जिनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ प्रायः अविकसित रह जाती हैं, तथापि वह अविकसित मन वाला व्यक्ति भी जीवित तो रहता है।

अन्ततः प्राण शरीर से निकलने लगे। अब तो शरीर की स्थिति वैसी ही हो गई जैसे किसी खूँटे से बँधे घोड़े को आप बेंत से मारें तो वह क्या करेगा? इधर तो खूँटे से बँधा होने के कारण वह वहाँ से भाग नहीं सकता, किन्तु बेंत की ताड़ना भी उसके लिए यातनादायक है, अतः वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उस खूँटे को ही उखाड़ने का यत्न करेगा। यही स्थिति शरीरस्थ इन्द्रियों की भी हुई। प्राणों के शरीर से निकलते ही नेत्र, कान, नाक, वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ अपना स्थान छोड़कर बाहर जाने लगीं और शरीर के मृत–अवस्था में पहुँचने की–सी स्थिति उत्पन्न हो गई। इस प्रकार शरीर की अवस्थिति के लिए प्राणों की श्रेष्ठता और वरीयता सिद्ध हो गई। अब सभी इन्द्रियाँ इस प्राण के निकट आकर कहने लगीं–"तू हममें श्रेष्ठ है, तू हमारा स्वामी है, तू इस शरीर से मत निकल !" सिद्ध हुआ कि शरीर में प्राणशक्ति ही जीवन का आधार है।

तदनन्तर वाणी ने उसकी महिमा का उल्लेख करते हुए कहा–मुझे लोग वसिष्ठ कहते हैं, किन्तु वास्तव में तो तू ही वसिष्ठ है। वसिष्ठ का अर्थ है आच्छादन–शक्ति। पुनः आँख ने कहा–लोग मुझे प्रतिष्ठा कहते हैं, किन्तु हम सबकी प्रतिष्ठा का कारण तो तू ही है। कान ने कहा–लोग मुझे सम्पदा कहते हैं किन्तु वास्तविक सम्पदा तो हे प्राण, तू ही है। अन्त में मन ने कहा–मैं आश्रय कहलाता हूँ, किन्तु इस शरीर का वास्तविक आश्रय तो तू ही है।

निष्कर्ष रूप में उपनिषत्कार ने कहा कि यदि प्राण न हों तो वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन आदि अस्तित्वहीन हैं। प्राणों के रहने से ही इनकी भी स्थिति है। उनके न रहने पर ये गोलक–मात्र रह जाते हैं। मृत शरीर में भी नेत्रों के स्थूल गोलक तो रहते हैं किन्तु उनमें दर्शन–शक्ति नहीं, जिह्वा यथावत् है किन्तु प्राणरहित शरीर बोलता नहीं, कान है किन्तु यह सुनता नहीं, नासिका है किन्तु श्वसन–क्रिया नहीं होती। अतः शरीर का आधार प्राण है।

इस प्राणविद्या का प्रवचन आचार्य सत्यकाम जाबाल ने व्याघ्रपाद पुत्र गोश्रुति के लिए किया था और इसके माहात्म्य का कथन करते हुए अतिशयोक्तिरूप में उसने कहा कि यदि प्राणविद्या का यह उपदेश किसी गुरु के द्वारा शुष्क वृक्ष के लिए भी किया जाए तो उसमें नई कोंपलें तथा शाखाएँ फूट पड़ेंगी। अभिप्राय इतना ही है कि प्राणशक्ति के अभाव में वृक्ष भी सूख जाते हैं, किन्तु प्राणों की विद्यमानता में वे एक बार सूखकर पुनः हरे–भरे हो जाते हैं। –छान्दोग्योपनिषद् 5.1,2

'उपनिषदों की कथाओं' से साभार

☞ पृष्ठ 04 का शेष

जो आर्य नहीं, वो ...

कोई प्रयत्न किया हो, ऐसा एक भी प्रसंग उनके पूरे जीवन में नहीं मिलता। इस महामानव के तपस्वी, बलिदानी, परोपकार को समर्पित जीवन के बदले प्राप्त इस वेदविद्या की पवित्र पूँजी का हम उसके अनुयायी कहलाने वाले ही यूँ घोर तिरस्कार करेंगे ? ऋषि का सम्पूर्ण साहित्य हमारे लिए उनका जीवन–धन है, आर्यो ! इसे अपना जीवन–धन बनाने के लिए कुछ तो करो। किसी भी दृष्टि से, किन्हीं अंशों में समाज व संसार को यह तो लगे, कि हम आर्य कहलाने वाले महर्षि दयानन्द के शिष्य बनकर उनके जीवन–मूल्यों को सफल व सार्थक कर रहे हैं। कोई हमसे आकर यह पूछने लगे कि आर्यसमाज के सदस्यता रजिस्टर में नाम लिखाने, साप्ताहिक सत्संगों–उत्सवों में भाग लेने और चन्दा देने के अतिरिक्त आपके जीवन में ऐसा क्या है, कि आप स्वयं को ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित लेखराम और पं. गुरुदत्त विद्यार्थी की परम्परा का आर्य कह सकें? कोई दूसरा यह प्रश्न न पूछे तो कभी स्वयं अपने आप से पूछकर इसका उत्तर देने का प्रयास अवश्य करें।

जिसके जीवन में ज्ञान गमन और प्राप्ति जैसे सद्गुणों को स्वीकारने, सशक्त करने की ललक है। जो पंच महायज्ञों का अनुष्ठान करते हुए आर्यसमाज के नियमों के अनुसार, जीवन जीने के लिए सच्चे मन से प्रयत्नशील हैं, वे भाग्यवान स्त्री–पुरुष आर्यसमाज के प्रथम कोटि के आर्य समाजी सदस्य कहे जाने योग्य है। इन्हीं में से अपेक्षाकृत अधिक सद्गुणी –सत्कर्मी स्त्री–पुरुषों को इससे थोड़ी उच्च कोटि में रखकर कार्यकारिणी के सदस्य व पदाधिकारी बनाया व माना जा सकता है। इनको सदस्यों–सभासदों से सद्गुणों, सद्विचारों व सद्भावों की दृष्टि से निश्चित रूप से श्रेष्ठ होना चाहिए। अपने से न्यून गुण वालों को पदाधिकारी के रूप में चुनना किसी सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक व राष्ट्रीय संस्थान के लिए शुभ संकेत नहीं कहे जा सकते। दोगले व्यवहार वाले दुर्गुणी–दुर्व्यसनी व दुष्ट आचरण वालों को पदाधिकारी के रूप में चुनना उस संस्था के संस्थापक व संस्था के पावन उद्देश्य को आग लगाने जैसा जघन्य पाप है। आर्यसमाज प्रभु के वेदज्ञान को विश्वस्तर पर प्रचारित–प्रसारित करके संसार के उपकार अर्थात् मनुष्य मात्र की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनी है। इस संस्था के शीर्ष पदों पर दूषित मनोवृत्ति और छोटी सोच के लोगों को बिठा देना पूरी मानवता के साथ किया गया जघन्यतम पाप है। हम इसके दुष्परिणामों को न देख पाएँ, देखकर भी अनदेखी करें तो इससे हमारा पाप कम नहीं हो जाता! तनिक विचार कर देखें कि जब तक सद्गुण–सम्पन्न, सदाचारी धर्मभाव वाले सिद्धान्त–जीवी सज्जनों को पदाधिकारी बनाने की परम्परा थी, तब तक आर्यसमाज देश–विदेश में किस उच्च भावना और प्रभावोत्पादकता के साथ वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार कर रहा था। जब इसमें गिरावट आने लगी, हम संकीर्ण स्वार्थी–जातिवादी सोच या दलबन्दी में फँसकर अयोग्यों को चुनने लगे तो हमारे प्रसिद्ध आर्य नेता महाशय कृष्ण कहा करते थे कि अब आर्य समाज बौने दिमाग वालों के कब्जे में आ गया है। आज तो स्थिति और भी दयनीय है। हम मानें या न मानें, सिद्धान्त हीन, आर्योचित पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान न करने वाले, अधर्मात्मा जनों को आर्यसमाज जैसी पावन संस्था के मंत्री–प्रधान बनाना, उनका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग–समर्थन करना मानवता के प्रति किया जाने वाला जघन्य पाप है। आज आर्यसमाज के पास न संसाधनों की कमी है और न समर्पित कार्यकर्त्ताओं न उच्च कोटि के गम्भीर विद्वानों का अभाव है और न धर्मधुन वाले प्रचारकों–उपदेशकों की न्यूनता। आर्य समाज के पास उसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हर घटक है, बस केवल समाज के कर्णधार कहलाने वाले क्षुद्र–बुद्धि, लोकेषणा ग्रस्त पदाधिकारी ही अपनी अहम्मन्यता के चलते सब पर भारी पड़ते रहे हैं।

क्रमशः

गाँव–सूरौता, भरतपुर (राज.)

पेड़ों पर उगते पेड़े

● देवनारायण भारद्वाज

आचार्य महेशचन्द्र गर्ग अकेले ही एक महान संस्था का कार्य करते रहते हैं। यहाँ पर मैं उनके सम्पूर्ण कार्यकलाप का दिग्दर्शन कराने नहीं चला हूँ। उनका जो बाल–चरित्र निर्माण का कार्य है, वह अद्भुत एवं उदाहरणीय है। कविता–भाषण–मंत्रपाठ प्रतियोगिताओं के माध्यम से बच्चों में जो संस्कारों का सृजन होता है, वह प्रखर एवं प्रभावोत्पादक तो है ही। इसके अतिरिक्त अपने निर्देशन में चलने वाले सभी माध्यमिक विद्यालयों में सत्र–शुभारम्भ पर जो वे विद्यारम्भ संस्कार कराते हैं; वह बच्चों के सच्चरित्र रूपी मनभावन भवन की नींव का काम करता है। उनके कार्य का केन्द्र सासनी (हाथरस) होते हुए भी मासिक पत्रिका 'हितोपदेशक' के द्वारा उनकी पहुँच पूरे भारत में रहती है।

वैदिक विद्यालय सासनी में प्रविष्ट छात्रों के विद्यारम्भ संस्कार हेतु इस वर्ष कन्या गुरुकुल सासनी की मुख्याधिष्ठात्री मान्या कु. कमला स्नातिका को आमन्त्रित किया था; जिन्होंने अपनी ब्रह्मचारिणों को साथ लेकर मधुर मन्त्रोचारण पूर्वक यज्ञ एवं गायन कराया, फिर बच्चों को विद्यारम्भ सम्बन्धी शास्त्रीय उपदेश दिया।

प्रायः ऐसे अवसरों पर विद्यालय के बच्चों से बात करने के लिए आचार्य श्री इस लेखक को भी बुला लेते हैं। इस बार जब मैं वहाँ गया तो बच्चों से वार्ता की सामग्री मुझे बस से उतरते ही अड्डे पर मिल गयी। सासनी के अमरूद दूर–दूर तक अपनी मिठास के लिए प्रसिद्ध हैं। उत्तम श्रेणी के अमरूद तो प्रातः काल की मण्डी से ही बाहर को निर्यात हो जाते हैं।

शेष बचे अमरूद दिन भर बस अड्डे के आस–पास ठेलों पर बिकते रहते हैं। ठेले वाले ज़ोर–ज़ोर की आवाज़ लगाकर अपने अमरूदों की गुणवत्ता का बखान कर ग्राहकों को अपनी ओर खींचते हैं। प्रातः से सायं तक उनके वाक्य तो बदलते रहते हैं, किन्तु तत्काल जो वाक्य मैंने सुने– उन्हें आप भी सुनिए।

एक ठेले वाला बोला– ***'लो जे हैं पेड़े'।*** दूसरा ठेले वाला बोला– ***'पेड़े वे हैं कि जे हैं पेड़े'।*** तभी तीसरा ठेले वाला बोला– ***'पेड़े न उसके न तेरे पेड़े हैं मेरे।'*** ये तीनों वाक्य सुनकर मुझे हँसी आ गयी और में उस बाज़ार से निकल कर बड़े मनोविनोद के वातावरण में वैदिक विद्यालय के अतिथि, शिक्षक एवं विद्यार्थियों से भरे हुए सभागार में पहुँच गया। यज्ञ की ब्रह्मा और उपदेष्टा पूज्या कमला स्नातिका जी के संस्कार–सम्बोधन के बाद मुझे भी बच्चों से संवाद करने का आदेश दिया गया।

मैंनें अपनी बात तीनों ठेले वालों द्वारा कहे गए वाक्यों को दोहराते हुए प्रारंभ की। अमरूद के ठेले वाले हों या अन्य वस्तुओं को बेचने वाले, सभी अपनी भाषा को अलंकारपूर्वक ही बोलते हैं। तीनों ठेले वाले बेच रहे अमरूदों का नाम नहीं ले रहे थे, किन्तु पेड़े की उपमा से महिमामण्डित करके ग्राहकों को आकर्षित कर रहे थे। अमरूद मीठा व स्वादिष्ट भी हो सकता है; नहीं भी हो सकता है। पर पेड़ा तो मीठा ही मीठा होगा। स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता के कारण अमरूद पेड़े की तुलना में कहीं अधिक वज़नदार है; किन्तु आर्थिक मूल्य की दृष्टि से पेड़ा अमरूद की अपेक्षा बीस गुना भारी पड़ता है।

मैंने बच्चों से पूछा– अमरूद कहाँ से आता है? उन्होंने ठीक उत्तर दिया– बाग से; फिर पूछा– पेड़ा कहाँ से आता है? उन्होंने इसका भी ठीक उत्तर दिया– हलवाई की दुकान से। इस कथन से बच्चों से संवाद करने की सम भूमिका बन गयी। मैंने उन्हें बताया ये दोनों वस्तुएँ बाग व दुकान पर आने से पहले धरती माता के गर्भ में आती हैं। भूपालक किसान ही इनका उत्पादन करके बाजार में पहुँचा देता है। अमरूद जैसे उपजते हैं वैसे ही बाजार में आ जाते हैं। अधिक गुणकारी होते हुए भी इनका मूल्य कम ही रहता है। भू माता से उपजे गन्ने की खाँड, भूमि से निकले चारा– दाना को खाकर गौमाता के दूध से बने खोए को मिश्रित कर हलवाई स्वादिष्ट पेड़े बना देता है; और इसका मूल्य बहुत बढ़ा देता है। स्थान–स्थान के अमरूद प्रसिद्धि पाते हैं; पर अपनी ऋतु में ही मिल पाते हैं; किन्तु बारहों महीने मिलने वाले पेड़े अपने स्वाद के कारण नगरों को विश्व प्रसिद्ध बना देते हैं, जैसे 'मथुरा व बदायूँ का पेड़ा' कहते–कहते ही मुँह में पानी आने लगता है।

पता यह चला कि प्रकृति के माध्यम से परमात्मा सभी वस्तुओं की 'कच्चे माल' के रूप में उत्पत्ति करता है और मनुष्य उन्हीं वस्तुओं से एक ही प्रकार की नहीं, आवश्यकतानुसार विविध वस्तुओं का निर्माण कर लेता है। सोना, चाँदी, लोहा आदि धातुएँ एवं हीरा आदि माणिक्य यदि तराशे व तपाए न जाएँ तो मिट्टी में ही पड़े रहें और उपयोगी मुद्रा व आभूषण न बन पाएँ।

परमात्मा की प्राकृतिक सम्पदा को सुखदा–वसुधा बनाने का कार्य मनुष्य को करना पड़ता है इसीलिए परमात्मा ने मनुष्य को सब जीवों से ऊपर अपने प्रतिनिधि के रूप में पृथ्वी पर भेजा है। अपने ब्रह्माण्ड के भू, अन्तरिक्ष एवं सूर्यलोक की भाँति उसे भी शरीर एवं हृदय का परिपूर्ण पिण्ड प्रदान किया है। सृष्टि के प्रारंभ में ही परमपिता परमात्मा ने बोल–बोल कर मार्गदर्शन कर दिया है, जिसे श्रुति कहते हैं। आदि ऋषियों ने इस श्रुति–दर्शन को देखा और आगे आने वाले अपने शिष्य ऋषियों को इस श्रुति की संस्कृति को सुनाए जाने की परम्परा स्थापित कर दी। वेद में वर्णित पदों का निहितार्थ उन्होंने सृष्टि के पदार्थों का अवलोकन कराकर मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित कर दिया। इसके आभा क्षेत्र में जो बना रहेगा वह मनुष्य से पितर देव के महान पद का अधिकारी बन जाएगा और जो इसकी उपेक्षा कर देगा, वह पशु–राक्षस होने से बच नहीं पाएगा।

'मनीषिभिः पवते पूर्व्यः' (साम 722) मननशील होकर व्यक्ति सनातन रचनाओं को पवित्र या रक्षित करता है। यह यम–नियम आदि साधनों से शाश्वत आनन्दमय आदि कोशों को सींचता है। तीनों शरीरों में निवास करने वाले जीवात्मा को प्रसिद्ध करता, संसार में मित्रता के लिए जीवनशक्ति को बढ़ाता और आनन्द की वर्षा करता। सत्संगति से वह कौन–सी ऊँचाई है, जिसे प्राप्त नहीं कर सकता और कुसंगति से बढ़कर वह कौन–सी खाई है, जिसमें जाकर वह डूब नहीं जाता?

चित्रकार ने विद्यालय–दर–विद्यालय घूमते हुए एक नन्हें भोले–भाले बालक का चित्र बनाया। इसके प्रदर्शन से उसने खूब प्रसिद्धि पायी व प्रभूत धन भी कमाया। बूढ़ा होते–होते वर्षों बाद चित्रकार के मन में एक भयंकर वीभत्स मनुष्य का चित्र बनाने की कामना जाग उठी। जेल–दर–जेल भटकते हुए वह एक कैदी के सामने रुक गया और उसका चित्र बनाने की इच्छा प्रकट की। जब वह तैयार नहीं हुआ, तो उसे एक चित्र दिखाकर बताया– मेरा तो काम ही चित्र बनाने का है। प्रस्तुत चित्र को देखकर भयंकर कैदी जब दहाड़ें मार कर रोने लगा, तब जेलर ने कहा भयंकर – उत्पीड़क यातनाएँ दिए जाने पर भी तुमने आँसू नहीं गिराए और आज इस चित्र को देखकर रो रहे हो। रोते हुए कैदी ने उत्तर दिया– 'वर्षों पूर्व बनाया गया यह चित्र मेरा ही है। मैं क्या से क्या हो गया।'

कई ऐसी घटनाएँ देखने में आयी हैं, जिनमें भेडिए जैसे हिंसक पशु किसी छोटे बालक को उठा ले गए, उसे मारा नहीं अपने साथ रख लिया। वह उन्हीं के साथ बड़ा होता गया। मानव की संतान समझ कर उसे पकड़ लिया गया। लाख प्रयत्न करने पर भी चलने–फिरने बोलने– खाने–पीने में पशु ही बना रहा। मानवीय स्वभाव सिखाते–सिखाते चिकित्सक थक गए और उसके प्राण पखेरू उड़ गए, किन्तु वह मनुष्य नहीं बन पाया।

सामयिक रूप से मिलने वाली माता की लोरियाँ व पिता की थपकियाँ एवं अध्यापक की झिड़कियाँ ही खोलती हैं वे खिड़कियाँ जिनसे निर्बाध आती शिक्षा–संस्कार की बयार बालक के मानस को निरंतर परिष्कृत करती रहती हैं, जिससे वे पशुता की दुष्प्रवृत्तियों को छोड़कर मानवता की सद्वृत्तियों से अलकृंत हो उठते हैं।

'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़–202001

गुरुकुल खेड़ा–खुर्द में अध्यापकों की आवश्यकता

दिल्ली की प्रसिद्ध संस्था 'श्री मद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल' खेड़ा–खुर्द में अध्यापकों की आवश्यकता है।
इच्छुक सज्जन सम्पर्क करें।

आचार्य सुधांशु
मो. 9350538952
8800443826

राष्ट्र निर्माण में योग की उपयोगिता

● डॉ. सुशील वर्मा

वेदों की असमानताओं में समानता एवं अनेकताओं में एकता की खोज विश्व संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। वेदों के अनुसार इस पृथ्वी पर भिन्न–भिन्न रूप, रंग भेदों और, नाना धर्म वाले मानव सदा से ही रहे हैं और रहते रहेंगे।

"जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रधारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।" अथर्व 12.1.45

अलग–अलग धर्म होते हुए भी परमात्मा एक है। यह प्रायः स्वीकार्य है इसीलिए ऋग्वेद (1.164.46) कहता है।

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'

इसी सन्दर्भ में भारत के ऋषि मुनियों ने सारे विश्व को एक परिवार अथवा कुटुम्ब माना–**"वुसधैव कुटुम्बकम्"** यही अनेकता में एकता राष्ट्रीय जीवन का मूलमन्त्र है। यही एकता स्थापित करने वाली जीवनव्यवस्था अथवा संस्कृति ही राष्ट्रीयता है। मातृभूमि, मातृभाषा एवं मातृसंस्कृति के एकाकार का नाम ही तो राष्ट्र है। राष्ट्र भूमि का एक भाग नहीं अपितु वहाँ एकता में रहने वाले ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं। राष्ट्र कोई मत, सम्प्रदाय, वर्ग, जाति व बोली नहीं है। यदि जन–संस्कृति की एकता, भूमि की एकता और अखण्डता से मेल नहीं खाती तो सब निष्फल है। मातृभूमि की एकता ही वह वेदी है जहाँ राष्ट्रीय यज्ञ की आहुतियाँ राष्ट्र के अधिदेवता तक समर्पित की जाती हैं। **"इदं राष्ट्राय स्वाहा, इदं राष्ट्राय इदं न मम"। "माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** (अथर्व 12.1.12) माता पुत्र के प्यार की अनुभूति राष्ट्र निर्माण की सबसे सुदृढ़ नींव है। माता पुत्र का प्यार ही व्यक्ति को राष्ट्र भक्त बनाता है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि जो जन जिसके अन्न, जल, औषधि फल–फूल से पोषित होते हैं उन्हें उस राष्ट्र के प्रति विश्वस्त होना चाहिए। राष्ट्र की रक्षा के लिए सदा बलिदान देने के लिए तत्पर रहना परम कर्त्तव्य है– **वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम** (अथर्व 12.1.62)

अमर तत्वों का ज्ञान, श्रम, तप, दक्षता एवं यज्ञ–दान आदि ही हमें इन वेद उपदेशों को क्रियान्वित करने का उचित साधन प्रदान करते हैं।

इन्ही सत्यताओं से निर्मित भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति अमर है। **"सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।"** अथर्व 12.1.1.

यह सब कुछ प्राप्त हो सकता है' योग से । योग–दर्शन वेदों का एक अंग है। पतंजलि के अनुसार, चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।** योग दर्शन 1.2। योगदर्शन के अनुसार योग के आठ अंग हैं **यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा–ध्यान–समाधयोष्टागनि।।** योगद. 2.29.

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह पांच नियम, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं प्राणिधान (ईश्वर शरणागति) इन का पालन करते हुए योग में दक्ष होकर व्यक्ति योग शक्तियों द्वारा राष्ट्र रक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसके अतिरिक्त साधना, ध्यान, धारण एवं समाधि दिव्यज्ञान व दिव्यशक्तियाँ संचित करके राष्ट्र को अपूर्वबल प्रदान कर सकते है। कमज़ोर व्यक्ति न तो परमात्मा को पा सकता है और न ही सांसारिक सुखों को। उपनिषद् कहता है **नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यो।** योगसाधना से शक्ति एवं ज्ञान की अभिवृद्धि होती है।

प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त ज्ञान–विज्ञान का अध्ययन भी आवश्यक है। आज विश्व के अन्य देश वैज्ञानिक अनुसन्धानों के कारण ही वैभव व ऐश्वर्य में तीव्रगति से प्रगति कर रहे हैं। हमारे ऋषि मुनि भी उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे। विज्ञान आज भी उस स्तर तक नहीं पहुँच पाया जो हमारे पूर्वज निर्धारित कर गए। हमारा दुर्भाग्य रहा कि आक्रान्ताओं चाहे वे मुगल हों अथवा अंग्रेज़, उन्होंने हमारी सारी संस्कृति सभ्यता, विज्ञान की उपलब्धियों को समाप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। हममें हीनता एवं निष्कृष्टता के भ्रम–जाल में फँसा कर अपनी सभ्यता को हम पर छल–बल से थोपा। परिणामस्वरूप हम अपनी धरोहर, सभ्यता, संस्कृति से दूर होते चले गए और पहले मुसलमानों के फिर अंग्रेजों के गुलाम होते–होते उन लोगों को अपने से श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली मानते रहे और उसी रंग में अपने को ढालते गए। आज परिणाम स्पष्ट है, न भाषा अपनी रही, न ही वेशभूषा, न ही शिक्षा और न ही उच्च चरित्र एवं आचरण। आज हम प्रयास तो कर रहे हैं उस संस्कृति को अपनाने का।

पाश्चात्य देशों ने ज्ञान–विज्ञान के बल पर ही भारी प्रगति की। उनका वैभव व ऐश्वर्य तीव्र गति से बढ़ा है। वेदों के अनुसार जिस राष्ट्र के नागरिक ज्ञान–विज्ञान के साथ सैन्य–बलों का विकास करते हैं वहाँ सुखों एवं पुण्यताओं की धाराएँ बहती हैं।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यप्रक्षेत्रं यत्र देवाः सहाग्निना।

यजु 20.25

योगविद्या उस बल व ज्ञान को प्राप्त करने की विद्या है। इसमें ब्रह्म और क्षत्र शक्तियों के समन्वय की अद्भुत शक्ति है। इससे मन की मलिनताएँ दूर होकर पवित्रताओं का उदय होता है। योगाभ्यास से आत्म बल का अभ्युदय होता है। यदि व्यक्ति नियमित रूप से कुछ यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करता है तो वह निरोग, बलिष्ठ, दीर्घजीवी एवं प्रसन्नचित रहेगा।

यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि अधिकतर लोग योगाभ्यास की तुलना व्यायाम से करते हैं। योगाभ्यास से हम अपनी श्वासों को नियन्त्रित करते हुए दीर्घायु को प्राप्त होते हैं। व्यायाम में श्वास पर नियन्त्रण नहीं कर पाते। योगाभ्यास में न हमें किसी प्रकार की थकान महसूस होती है और न ही विश्राम की इच्छा। वहीं व्यायाम से थकावट भी होती है योग और विश्राम की इच्छा रहती है। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक का प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। योग के आसनों, प्राणायाम, ध्यान व समाधि द्वारा लघु व बृहद् मस्तिष्क को पूर्णरूपेण स्वस्थ करते हैं जब कि व्यायाम में मस्तिष्क के लिए कोई स्थान नहीं है। योग श्वासों को सामान्य करते हुए मन व चित्त को विचारों से शून्य कर मन को एकाग्र करते हुए ध्यान की ओर अग्रसर करता है। अतः योग भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक है। योग विद्या तो भारतीय ऋषियों द्वारा प्रदत्त एक महाविज्ञान है जो मानवमात्र के लिए वरदान है, महत्त्वपूर्ण, उपयोगी सुखदायी एवं मोक्षदायी है।

वेद का कथन है कि तीन देवियों अथवा शक्तियों के योग से राष्ट्र का निर्माण होता है।

तिस्रो देवीर्बहिरेदं सदन्तिद्ड़ा सरस्वती–भारती। मही गृणाना।।

यजु 27,19

तीन देवियाँ क्रमशः 'इडा'–पृथिवी–स्थानीय, 'सरस्वती' अन्तरिक्ष–स्थानीय और भारती द्युलोक–स्थानीय देवता मानी जाती हैं। ईड़ा–संस्कृति है जिसके अन्तर्गत पाँच देवता हैं– मातृदेव, पितृदेव, आचार्यदेव, अतिथिदेव एवं पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी देवता है।

सरस्वती अर्थात् वेद, शिक्षा, वाणी, कला, प्रज्ञा बुद्धि।

इसी प्रकार भारती–संगठन, मित्रता, देवपूजन यज्ञ आदि के माध्यम से ये तीनों हमारी शारीरिक–उन्नति, आत्मिक–उन्नति एवं सामाजिक–उनति के लिए हैं। इस तरह हम उनके महत्व को समझते एवं अपनाते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहभागी बनते हैं। यही हमारा प्रयास होना चाहिए, योग को जीवन में अपनाना ही हमारा ध्येय बने।

गली मास्टर मूलचन्द वर्मा
फाज़िलका 152123 (पंजाब)
मो. 7009822720

तुलसी की वैज्ञानिक महत्ता

घर के दरवाजों और खिड़कियों के आगे, चारदीवारी के साथ–साथ और आँगन में तुलसी के पौधे उगाइये, आपको स्वस्थ वायुमंडल मिल जायगा। रोग पास नहीं फटकेंगे। तुलसी के पौधों की बीजाई, रोपाई, निराई–गुड़ाई और सिचाई अपने हाथों से कीजिये। आपको चर्म रोगों का डर नहीं रहेगा। हाथों–पैरों का चम्बल, एग्ज़ीमा और दाद व छाजन अपने–आप जाते रहेंगे।

प्रातः और सायं तुलसी के बिरवा के आगे धप–दीप जलाने से नयनों की ज्योति बढ़ेगी, श्वास के कष्ट मिटेंगे, क्योंकि तुलसी से उड़ते रहनेवाला तेल अदृश्य रूप से आपको कान्ति, ओज और शक्ति से भर देगा। सुबह–शाम नहा–धोकर एक धोती बदन पर लपेटकर तुलसी की परिक्रमा करके केवल उस दिशा में खड़े हो जाइये जिधर से हवा तुलसी को छकर आपको लगे, मात्र इसीसे नारी और पुरुष सन्तान पा लेते हैं क्योंकि यह हवा यौनांग के विकार मिटाकर उन्हें पुष्ट और सबल बनाती है।

तुलसी डाल की माला, करधनी, गजरे और कंठी पहनने से आपके अन्दर तंदुरुस्ती की लहरें दौड़ने लगेंगी। इन्हें दिखावे और पाखण्ड न समझिये, क्योंकि तुलसी की लकड़ी में संजीवनी शक्ति है जो बिजली की तरह रोम–रोम में जवानी भर देती है।

तुलसी की बगीची में बैठकर पढ़िये, लेटिये, खेलिये और व्यायाम कीजिये। आपको दीर्घायु मिलेगी, आपको सुख– वैभव पाने के लिए उत्साह मिलेगा, 'तुलसी' कवच की तरह रक्षा करेगी।

पंचमहायज्ञों एवं शाकाहार से युक्त वैदिक जीवन ही श्रेष्ठ है

● मनमोहन कुमार आर्य

वेद सृष्टि के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदों के अध्ययन से ही मनुष्यों को धर्म व अधर्म का ज्ञान होता है जो आज भी प्रासंगिक एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान में संसार में जो मत– मतान्तर प्रचलित हैं वे सब भी वेद की अधिकांश शिक्षाओं से युक्त हैं। उनमें जो अविद्यायुक्त कथन व मान्यताएँ हैं वह उनकी अपनी हैं। वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। यह ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा को दिया था। ईश्वर एक सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अनादि, नित्य, अविनाशी तथा अमर सत्ता है। इस सृष्टि की रचना भी परमात्मा ने ही की है और इसका पालन भी सर्वव्यापक तथा सब जीवों व प्राणियों का पिता सर्वेश्वर ही कर रहा है। सर्वज्ञ व सर्वव्यापक होने से परमात्मा इस संसार, ब्रह्माण्ड वा विश्व के बारे में सब कुछ जानता है। मनुष्य कितना भी ज्ञान प्राप्त कर लें, यहाँ तक कि उपासना आदि से ईश्वर का साक्षात्कार भी कर लें, परन्तु वह परमात्मा के समान ज्ञानवान नहीं हो सकते। ईश्वर प्रदत्त वेदज्ञान का अध्ययन करने पर उसमें ईश्वर की सर्वज्ञता का बोध व दर्शन होते हैं।

वेदों का अध्ययन कर ही हमारे ऋषियों ने एक मत होकर, सृष्टि के विगत 1.96 अरब वर्षों के इतिहास में, सभी मनुष्यों के पाँच प्रमुख कर्त्तव्य बताए हैं जिन्हें पंचमहायज्ञ या पाँच प्रमुख कर्त्तव्य कहा जाता है। इन पंचमहायज्ञों के नाम हैं **ईश्वरोपासना वा सन्ध्या, देवयज्ञ अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा बलिवैश्वदेवयज्ञ।** इन पंचमहायज्ञों से युक्त होने के कारण ही वैदिक धर्म व संस्कृति यज्ञमयी संस्कृति कही जाती है। हमें यज्ञ शब्द के अर्थ का ज्ञान भी होना चाहिए। यज्ञ श्रेष्ठतम् व सत्यज्ञान से युक्त कर्मों को कहते हैं। परोपकार व सुपात्रों को दान देना भी यज्ञ में सम्मिलित है। यज्ञ का एक अर्थ विद्वान् चेतन देवों की पूजा व सत्कार करना होता है। चेतन देवों माता, पिता व विद्वानों सहित पृथिवी, अग्नि, वायु, जल, आकाश आदि जड़ देवों की पूजा अर्थात् इनका सत्कार व इनसे लाभ प्राप्त करना, संगतिकरण तथा दान देना भी होता है। अग्निहोत्र यज्ञ में देवपूजा, संगतिकरण तथा दान का अच्छा समावेश रहता है। यज्ञ में विद्वानों को आमंत्रित किया जाता है और उनसे सदुपदेश प्राप्त किया जाता है।

यज्ञ में हम जो घृत तथा साकल्य की आहुतियाँ देते हैं उनसे जड़ देवताओं का सत्कार होता है तथा प्रकृति व पर्यावरण का सन्तुलन बना रहता है। अग्निहोत्र यज्ञ से वायु व जल आदि की शुद्धि, रोगकारी कीटाणुओं का नाश तथा मनुष्य आदि प्राणी रोगों से रहित तथा स्वस्थ रहते हैं।

यज्ञ में वेदमंत्रों से ईश्वर की उपासना की जाती है जिससे वेदमंत्रों के अर्थों के अनुरूप परमात्मा हमारी प्रार्थनाओं को हमारी पात्रता के अनुसार पूरी करते हैं। यज्ञ से सब कामनाओं की पूर्ति एवं स्वर्ग की प्राप्ति होनी कही जाती है जो विचार करने पर सत्य एवं व्यावहारिक प्रतीत होती है। यज्ञ की इन सब व अन्य विशेषताओं के कारण ही परमात्मा ने वेदों में यज्ञ करने की प्रेरणा की है जिसे जानकर हमारे प्राचीन व अर्वाचीन ऋषियों व विद्वानों ने देश देशान्तर में यज्ञों का प्रचार किया था।

आज भी वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के अनुयायी, आर्यसमाजी इसके साहित्य से प्रेरित होकर यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं तथा यज्ञ से होने वाले लाभों को प्राप्त करते हैं। यज्ञ करने से मनुष्य रोगरहित तथा स्वस्थ एवं अभावों से रहित हो जाते हैं। यज्ञकर्ता सुखी एवं ज्ञान विज्ञान सहित होकर सामाजिक जीवन में भी उन्नति को प्राप्त करते हैं।

परमात्मा ने यह सृष्टि अपनी सनातन व शाश्वत जीवात्मारूपी प्रजा के लिए ही बनाई है। हम संसार में सुखों का भोग करते हैं जिसका आधार परमात्मा व उसकी सृष्टि ही है। हमारा शरीर भी हमें परमात्मा से ही प्राप्त होता है। सभी प्रकार के अन्न व भोजन आदि भी हमें परमात्मा द्वारा बनाए चराचर जगत् से ही प्राप्त होते हैं। अतः हमारा कर्त्तव्य होता है कि हम ईश्वर का ध्यान करें, उसे जानें, वेदाध्ययन करें, वेद में प्रस्तुत ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानकर उसकी उपासना करें और सदा उसके कृतज्ञ बने रहे। ईश्वर का ध्यान करने से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। उसकी आत्मा को ज्ञान प्राप्त होता है व उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, बल की प्राप्ति होती है, सद्प्रेरणाएँ मिलती है तथा ईश्वर उपासकों की रक्षा करता है। ईश्वर की उपासना से मनुष्य दुःखों से छूटकर सुखों को प्राप्त होते हैं। ऐसे अनेकानेक लाभ ईश्वर का सत्यज्ञान प्राप्त कर उसकी उपासना करने से होते हैं।

ईश्वर ने ही हमें यह श्रेष्ठ मानव शरीर दिया है। वही हमें परजन्मों में भी हमारे कर्मों के अनुसार जन्म, जीवन व आत्मा को सुख प्रदान करने वाले शरीर आदि देगा। यह क्रम अनन्त काल तक चलना है और हम अनादि व अमर होने के कारण ईश्वर से अनन्त काल तक वर्तमान जीवन के समान लाभान्वित होंगे। ईश्वर के जीवात्माओं पर इतने अधिक उपकार हैं कि कोई भी मनुष्य ईश्वर के उपकारों की गणना नहीं कर सकता। अतः ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होकर उसका ध्यान व उपासना करना तथा सभी प्रकार के अज्ञान, अन्धविश्वासों व पाखण्डों से दूर रहना हम सब मनुष्यों का कर्त्तव्य होता है। हमें सावधान रहकर अपने कर्त्तव्यों को जानकर उनका पालन करना चाहिए। ऐसा करते हुए और ईश्वर का ध्यान एवं चिन्तन करते हुए ही हम ईश्वर की सत्य उपासना करते हैं और इससे हमें जीवन में ज्ञान, सुख, धन, सम्पत्ति, जीवनोन्नति तथा ईश्वर साक्षात्कार आदि ऐश्वर्यो की प्राप्ति होती है। यही सब ऐश्वर्य मनुष्य के लिए जीवन में प्राप्तव्य होते हैं। मनुष्य को ईश्वर उपासना सहित अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ का भी नित्य प्रति सेवन करना चाहिए। इसके लिए हमें सत्यार्थप्रकाश, पंचमहायज्ञविधि, संस्कारविधि आदि ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए जिससे हमें पंचमहायज्ञों तथा यज्ञमय जीवन पद्धति का परिचय व ज्ञान हो सकेगा।

परमात्मा ने मनुष्य को दूसरे प्राणियों पर उपकार करने के लिए बनाया है। हमें ध्यान रखना होता है कि हमारे किसी कर्म से किसी भी प्राणी को अकारण पीड़ा न हो। अहिंसा का अर्थ भी वैर त्याग तथा दूसरे प्राणियों को अपने समान समझकर उनसे प्रेम व सत्कार का व्यवहार करने से पूरा वा सिद्ध होता है। शाकाहार से किसी प्राणी को पीड़ा नहीं होती जबकि मांसाहार करने से जिन प्राणियों के मांस का भक्षण किया जाता है, उन्हें अकारण असहनीय पीड़ा होती है। वेदों में मांस भक्षण का विधान कहीं नहीं है। वेद विरुद्ध व्यवहार व कार्य सब मनुष्यों के लिए अकर्त्तव्य अर्थात् अधर्म के कार्य होते हैं। ज्ञान व विज्ञान के अनुरूप मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए शाकाहार ही उत्तम भोजन होता है। शाकाहारी प्राणियों का जीवन मांसाहारी प्राणियों की तुलना में अधिक लम्बा होता है। हाथी व अश्व आदि बलशाली प्राणी शाकाहारी ही होते हैं। मांसाहार से अनेक रोगों की सम्भावना होती है। मांसाहार ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध अकर्त्तव्य एवं पापकर्म होता है जिसका फल मनुष्य को परमात्मा की न्याय व्यवस्था से जन्म जन्मान्तरों में भोगना पड़ता है।

हमारे महापुरुष श्री राम, श्री कृष्ण, आचार्य चाणक्य, महाराज विक्रमादित्य तथा ऋषि दयानन्द जी आदि शाकाहारी थे तथा अपूर्व ज्ञान व बल से सम्पन्न थे। हनुमान तथा भीष्म पितामह भी अतुल बलशाली थे और भोजन की दृष्टि से शाकाहारी ही थे अतः मनुष्यों को मांसाहार को त्यागकर शाकाहार को ही अपनाना चाहिए। यही जीवन सुख व उन्नति का आधार होता है। यदि हम अपने जीवन को यज्ञमय व शाकाहार से युक्त रखेंगे तो निश्चय ही हमारा कल्याण होगा। इसी कारण से हमें सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिए। अपने सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिएँ। ऐसा करेंगे तो निश्चय ही हमें मांसाहार का त्याग करना होगा और शाकाहार को अपनाना होगा। हमें सत्य मार्ग वेदपथ पर चल कर अपने जीवन को उन्नत व इसके प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति को सिद्ध करने वाला बनाना चाहिए। इसी लिए परमात्मा ने इस सृष्टि को बनाकर आरम्भ में ही मनुष्यों को वेदज्ञान दिया था। वेद अध्ययन व अध्यापन करने के ग्रन्थ हैं। हम इनका जितना अध्ययन करेंगे उतना ही अधिक लाभ प्राप्त करेंगे और यदि अध्ययन नहीं करेंगे तो ईश्वर की आज्ञा भंग करने वाले होंगे। वेदों का स्वाध्याय करते हुए यह ध्यान रखना है कि हमें ऋषि दयानन्द के वेदार्थों अथवा वैदिक विद्वानों के ही वेदार्थों को पढ़ना है। हमें वेदाध्ययन व वेदों का स्वाध्याय करते हुए यह ध्यान रखना है कि हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर तथा शाकाहारी भोजन करते हुए जीवन व्यतीत करें। यही जीवन पद्धति श्रेष्ठ व सर्वोत्तम है। हमें सर्वोत्तम को ही अपनाना व आचरण में लाना चाहिए। वेदों का अध्ययन व वेदों के अनुसार ही आचरण करना सब मनुष्यों का प्रमुख, श्रेष्ठ एवं उत्तम धर्म एवं कर्त्तव्य है। हमें इसे जानना चाहिए और इसी को अपनाना चाहिए जिससे हमें वर्तमान जीवन में सुखों की प्राप्ति होने सहित भविष्य के अनन्तकाल तक होने वाले हमारे जन्म–जन्मान्तरों में भी हमारा कल्याण हो। ओ३म् शम्।

196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
मो. 09412985121

ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानंद पर्यंत...

● डॉ. सूर्य देव शास्त्री

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के ये शब्द स्वामी दयानंद के संदर्भ में अक्षरशः सत्य हैं और कृतज्ञता का भाव सामाजिक चेतना के लिए आवश्यक समझता हूँ मैं सादर प्रणाम करता हूँ उस महागुरु दयानंद को जिनकी दिव्यदृष्टि ने भारत की आत्मगाथा में सत्य और एकता का बीज देखा, जिनकी प्रतिभा ने भारतीय जीवन के विविध अंगों को प्रदीप्त कर दिया, जिनका उद्देश्य इस देश को अविद्या, अकर्मण्यता और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व विषयक अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता के जागृति लोक में लाना था, उस गुरु को मेरा बारंबार प्रणाम है"

गुरु विरजानंद के चरणों में बैठकर स्वामी दयानंद ने लगभग 3 वर्षों में शिक्षा प्राप्त की, इन तीन वर्षों का समय कैसे बीता होगा? सच कहूँ तो स्वामी दयानंद के जीवन का यही निर्माण काल था, गुरु के चरणों में बैठकर स्वामी दयानंद जान चुके थे कि मेरे प्रश्नों के उत्तर अगर कहीं मिलेंगे तो केवल इसी अंधे गुरु की कुटिया में मिलेंगे, मैं तो पिछले कई दशकों से एक अच्छे गुरु की तलाश में भटकता रहा किंतु सत्य का बोध कराने वाला कोई आंशिकगुरु भी नहीं मिला, भाग्य से अब एक ऐसा गुरु मिला है जिसके पास सत्य के सिवाय कुछ भी नहीं है, पूर्णसमर्पण, अनुशासित जीवन, कठोर तपश्चर्या एवं सच्चे जिज्ञासु की भाँति जीवन पथ पर आगे बढ़े, जैसे प्यासे को पानी मिल गया हो, इस नियति से जीवन का यह समय कितनी तेजी से बीता कुछ पता ही नहीं चला, गुरु की सेवा, यमुना का तट, कुटिया की सफाई, पढ़ाई, दैनिक दिनचर्या के कार्य थे।

लगभग 3 वर्ष के उपरान्त गुरु विरजानंद की कुटिया से विदा लेने का समय आया– स्वामी दयानंद के मन में हजारों हजार विचार भावी जीवन को लेकर कौंध रहे थे, अध्ययन के उपरांत जीवन को किस दिशा में लेकर चलना है ? साधना का पथ श्रेष्ठ है अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार की दिशा में अहर्निश ध्यान में बैठने का अभ्यास अथवा सिद्धियाँ प्राप्त करके जीवन को नई ऊँचाइयों को छूना या एक सामान्य साधु की तरह किसी आश्रम में निवास निश्चित कर सामान्य जीवन बिताना कुछ भी निश्चित नहीं हो पा रहा था, आचार्य भर्तृहरि का वचन है– **"विधिरहो– बलवानितिमेमतिः"** अर्थात् – विधि का विधान बलवान है, जैसे ही गुरु विरजानंद की कुटिया से विदा के क्षण आए तो गुरु जी को लौंग भेंट करने का मन बन आया, प्रयत्न करके सेर भर लौंग लेकर गुरु के चरणों में उपस्थित हुए, गुरु जी का आभार व्यक्त किया और भेंट में देने लगे, गुरु जी ने पूछा यह क्या है?

इस पर स्वामी दयानंद ने कहा– गुरु जी ! मैं तो एक संन्यासी हूँ, – मेरे पास इससे अधिक कुछ भी तो नहीं है प्रयत्न करके यह कुछ लौंग लेकर आया हूँ, आप इन्हें स्वीकार कर लीजिए– इस पर गुरु जी ने कहा– "दयानंद ! मैं तो तुझसे कुछ और ही गुरु दक्षिणा चाहता हूँ" इस पर दयानंद ने कहा– गुरु जी ! आदेश कीजिए, गुरुजी बोले– "देश पराधीन है, समाज कुरीतियों से भरा पड़ा है, अज्ञानता, अविद्या, अकर्मण्यता से भरा पड़ा है, दयानंद! इस देश की अज्ञानता को दूर करो।" गुरु का आदेश सुनकर मानो दयानंद को जीवन जीने की दिशा मिल गई, हजारों– हजार प्रश्न क्षण भर में कहीं खो गए, आज जीने का सही उद्देश्य मिल गया, यह सुनकर गुरु जी के चरण स्पर्श किए तथा आशीर्वाद पाकर समाज सुधार के कार्य में जुट गए, इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा, बलिप्रथा, नरबलि, देवदासी, बालविवाह, छुआछूत, मूर्ति पूजा, गंगा स्नान से मुक्ति, आश्रम व्यवस्था वर्णव्यवस्था का वास्तविक बोध कराते हुए – गायत्री मंत्र, यज्ञोपवीत, यज्ञ,संध्या– वंदन, पंच महायज्ञ, के साथ–साथ देश की आजादी को मुख्य बिंदु बनाकर कार्य प्रारंभ किया, जगह–जगह प्रवचन किए जाने लगे, शास्त्रार्थ किए गए, शुद्धि का कार्य किया और विधर्मियों को परास्त किया, स्वामी जी कहा करते थे "विदेशी राज्य चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो स्वदेशी के समान कभी नहीं हो सकता" बाबा तुलसीदास का भी वचन है– "पराधीन सपनेहूँ सुख नाहीं " अर्थात् पराधीनता में लिए गए तो स्वप्न भी सुख नहीं देते अर्थात "स्वाधीनता" सर्वोपरि है।

स्वामी दयानंद देश की आजादी के लिए बड़ा काम करने की योजना बना रहे थे, सन 1867 की बात है आबू पर्वत से चलकर हरिद्वार की यात्रा प्रारंभ की. हरिद्वार में कुंभ का मेला था, वहाँ हज़ारों की संख्या में साधु मिलेंगे, उनमें से यदि कुछ साधु मेरे साथ चलने को तैयार हो जाएँगे तो कार्य करना और भी सुगम हो जाएगा।

कुछ दिनों की यात्रा के बाद स्वामी जी हरिद्वार के कुंभ के मेले में आ पहुँचे, वहाँ "सप्तसरोवर" नामक स्थान पर "पाखंड खंडनी पताका" लगा दी और पाखंडों का खंडन एवं वैदिक मत मंडन शुरु कर दिया। हजारों की संख्या में लोगों की भीड़ आने लगी और स्वामी जी के वचनों से प्रभावित होने लगी। धीरे–धीरे स्वामी जी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा था, जन सामान्य के बीच स्वामी जी की मान्यता घर करने लगी, स्वामी जी प्रातःकाल एवं सायंकाल में गंगा के किनारे घूमने निकल जाया करते और साधुओं के समूह को देख देश की आजादी के लिए तैयार करते, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में सहयोग की अपेक्षा करते, लेकिन पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी स्वामी जी को कोई सच्चा साधु न मिला, जो स्वामी जी के मिशन को पूरा करने में उनका सहयोग करता, धार्मिक कूपमण्डूकता, और पुरोहित तंत्र के चंगुल से छुटकारा, अंधविश्वासों की वास्तविकता, महंतो एवं मठाधीशों के षड्यंत्र, पंडे–पुजारियों के भ्रामकजाल से छुटकारा दिलाने के लिए स्वयं ही अहर्निश प्रयत्न करते रहे, स्वामी जी दिसंबर 1872 में कोलकाता पहुँचे, वहाँ रामकृष्ण परमहंस, देवेंद्र नाथ ठाकुर एवं ब्रह्म समाज के नेता केशव चंद्र सेन से मुलाकात की, केशव चंद्र सेन ने तो ब्रह्म समाज के नेतृत्व में स्वामी जी का सम्मान भी कराया लेकिन स्वामी जी के कुरीति उन्मूलन एवं देश की आजादी के विषय में कोई सहयोग न मिला। स्वामी जी अपनी नीतियों में परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे। जबकि ब्रह्म समाज पाश्चात्य संस्कृति का विरोध करने में असमर्थता अनुभव कर रहा था, स्वामी जी तो केवल वेद धर्म के सिद्धांत पर आगे बढ़ने के लिए प्रयासरत रहते थे, वे एक ऐसी वेदी की स्थापना करने के लिए संकल्प बद्ध थे जिसमें देश की अस्मिता, गौरव, वेद, उपनिषद, मनुस्मृति, ब्राह्मण ग्रंथ एवं आर्ष ग्रन्थों का प्रचार एवं स्वतंत्रता की चर्चा हो। स्वामी जी ने स्वयं लिखा है कि "मेरा वही मत है जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यंत ऋषियों का मत है।"

कुछ वर्ष पहले मुझे एक ऐसा ग्रंथ "भारत निर्माता" पढ़ने का मौका मिला जिसे पढ़कर पौराणिक जगत् के विद्वान् लेखक कृष्ण बल्लभ द्विवेदी की भावना समझने का मौका मिला उन्होंने लिखा– "मेरे मत में ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानंद पर्यंत ऋषि मुनियों की भारत भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है....."

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सैक्टर–14, फरीदाबाद (हरियाणा)

महर्षि दयानन्द का एक पौराणिक पण्डित से शास्त्रार्थ

– डॉ. भवानीलाल भारतीय

स्वामी दयानन्द के पंजाब प्रवास के समय एक पौराणिक पण्डित से हुए उनके शास्त्रार्थ का विवरण आर्यसमाज के वयोवृद्ध संन्यासी श्री अमरस्वामी ने इस प्रकार दिया है –

"मैं उन पण्डित जी का नाम भूल रहा हूँ। यह बात 1940–41 की है। उस समय उन पण्डित महाशय की आयु 90 वर्ष की थी। वे दृष्टिहीन हो चुके थे। मेरे यह पूछने पर कि स्वामी दयानन्द से हुए अपने शास्त्रार्थ का विवरण वे बताएँ, उक्त पण्डित जी बोले–स्वामी दयानन्द और मेरा शास्त्रार्थ क्या होना था? पढ़ने को मैंने भी पूर्ण व्याकरण पढ़ा है, फिर भी वे व्याकरण के सूर्य थे और मैं जुगनू। स्वामीजी मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे, इसलिए हमारे भक्त लोग हमको उभाड़ कर स्वामी जी के समक्ष ले आए। मैंने स्वामीजी से कहा कि हम आपके साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करेंगे। स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा, बहुत अच्छा, बताइए कि वेद में मूर्तिपूजा या मूर्ति कहाँ है? पाँच मिनट में आप बताइए, पाँच मिनट में मैं उत्तर दूँगा। इसी प्रकार पाँच–पाँच मिनट तक हमारा संवाद चलेगा।

स्वामीजी की बात सुनकर मैंने कहा कि 'मूर्तिपूजा' और 'मूर्ति' शब्द वेद से बाद में दिखलाऊँगा, पहले आप बताइए 'मिनट' शब्द वेद में कहाँ लिखा है? मेरे साथ हुल्लडबाजों की भीड़ थी। उन्होंने यह सोचकर कि इसका उत्तर तो कुछ होगा ही नहीं, तालियाँ बजा दी और 'सनातनधर्म की जय' के नारे लगाते हम लोग अपने स्थान पर चले आए। सनातन धर्मियों ने अपने विजय और स्वामीजी की पराजय की घोषणा कर दी। हमने ***'जान बची, लाखों पाए'*** कहकर अपने भाग्य को सराहा, किन्तु बाद में जब हमने अपनी उद्दण्डता और महापुरुष के प्रति अपने दुर्व्यवहार के बारे में सोचा, तो हमें पश्चात्ताप और ग्लानि हुई।

हम छुपकर उनके व्याख्यान सुनने जाते थे।"

{स्रोत : नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, प्रथम अजमेरीय संस्करण, पृष्ठ 554, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा}

पत्र/कविता

पं. परमानन्द

पं. परमानन्द का जन्म 1887 में सिकरौधा–राठ (हमीरपुर) उत्तरप्रदेश में हुआ था। गदर पार्टी से जुड़े इस मशहूर क्रांतिकारी ने सिंगापुर में इस संगठन के लिए, कार्य करते हुए सेना में कई जोशीले भाषण दिए, जिसका नतीजा यह निकला कि वहाँ की दो रेजीमेंटों ने हुकूमत के खिलाफ बगावत कर दी। सरकार इस पर सचेत हो गई और पंडित जी के पकड़े जाने की जुगत की जाने लगी। वे किसी तरह हिन्दुस्तान आ गए, पर यहाँ भी उन्होंने अपना काम जारी रखा। 1915 में पकड़े जाने पर 'गदर पार्टी' वालों पर सरकार ने हुकूमत को उखाड़ फैंकने का मुकदमा चलाया, जिसमें उन्हें फाँसी मिली, जिसे बाद में आजीवन कालापानी में तब्दील कर दिया गया। पंडित जी के साथ जिन लोगों को फांसी की सजा सुनाई गई, उनमें करतार सिंह सराभा प्रमुख थे।

जिस दिन सवेरे करतार को फांसी होने वाली थी, पं. जी ने एक घंटा पहले अपनी कोठरी से आवाज़ दी, 'करतार' क्या कर रहे हो ? करतार बोले, 'कविता लिख रहा हूँ। सुनोगे?' और करतार ने गाकर सुनाया, कविता रूप में–

जो कोई पूछे कौन हो तुम,
तो कह दो बागी नाम हमारा।
जुल्म मिटाना हमारा पेशा,
गदर का करना ये काम अपना।
नमाज–संध्या यही हमारी,
श्री पाठ–पूजा सब यही है।
धरम–करम यही है प्यारो,
यही खुदा और राम तेरी सेवा
में ऐ भारत
अगर तन जाएँ, सिर जाएँ,
तो मैं समझूँ कि है मरना
यहाँ पर भक्ति–पथ हमारा।

जवाब में पंडित जी ने करतार से कहा था, हम तुम्हारे मिशन को पूरा करेंगे। साथियो ! कसम हर हिंदी तुम्हारे खून की खाता है आज। यानि जैसे कवि वैसे श्रोता।

कविता तब क्रान्ति के पहिए पर चलती थी। पंडित जी अंडमान भेजे गए। वहाँ के जेलर बारी के अत्याचारों से कैदी इस कदर तंग थे कि इंदुभूषण नाम के क्रान्तिकारी ने आत्महत्या कर ली। उल्लासकर दत्त को इसी उत्पीड़न ने विक्षिप्त कर दिया। वहाँ पंडित जी को नारियल काटने और उसके छिलके का रस्सी बनाने का काम दिया गया, जिसे करने से उन्होंने इनकार कर दिया। बारी बोला, 'काम क्यों नही करता? पंडित जी ने शांत भाव से कहा, 'क्या मैं काम करने का नौकर हूँ? बारी चीखा, 'तुम बदमाश हो'। पंडित जी तैश में आ गए,' बदमाश तू और तेरा 'बाप'। अब बारी ने वही करना चाहा, जो वह दूसरे कैदियों के साथ करता आ रहा था, यानि पंडित जी की मरम्मत। वह गुस्से में उठ ही रहा था कि पंडित जी शेर की तरह गरजते हुए उसकी ओर लपके और उसे जमीन पर पटक दिया। बारी पर खूब लात–घूसे पड़े। बाद में लोगों ने दौड़कर उसे बचाया। नतीजा यह हुआ कि इस गुस्ताखी के लिए पंडित जी को टिकटी में बाँधकर तीस बेंत लगाए गए।

पंडित जी की शुरुआती शिक्षा इलाहाबाद में हुई, जहाँ उन्हें पंडित सुंदरलाल मिले, जो कर्मवीर निकालते थे। उसकी प्रतियाँ वितरित करने का काम पं. जी के सुपुर्द किया गया। उन्हीं के साथ बम बनाना सीखा। पुलिस को भनक लगी, तो कॉलेज से निकाल दिए गए। मदनमोहन मालवीय ने तब उनकी मदद की और वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पहुँच गए। जहाँ बाबू शिवप्रससाद गुप्त का साथ मिला। वे यूरोप यात्रा पर गए, तो पंडित जी को भी साथ ले गए। उसी समय लाला हरदयाल का पत्र उनके पास आया, अमेरिका 'चले आओ'। वहाँ लाला जी और दूसरे क्रान्तिकारियों की मदद से 'गदर पार्टी' का गठन किया गया, जिसके सेक्रेटरी बनाए गए पंडित जी। 'गदर पार्टी' के करीब छह हज़ार क्रान्तिकारी देश में आकर 26 सैनिक छावनियों में फैल गए थे लेकिन एक भेदिए के कारण वह क्रान्ति विफल हो गई। मुकदमें में 27 क्रान्तिकारियों को मृत्युदंड सुनाया गया, जिनमें से सात फाँसी चढ़े। वह गदर आन्दोलन की बड़ी चोट थी। पंडित जी अंडमान से छूटकर आए, तो 1942 में फिर पकड़े गए।

आज़ादी के बाद उन्होंने नेहरू के अनुरोध पर भी लोकसभा का चुनाव नही लड़ा। **लगभग 45 हज़ार पुस्तकों का अध्ययन करने वाले इस क्रान्तिकारी को कानपुर विश्वविद्यालय ने डी. लिट् और गोरखपुर विश्वविद्यालय ने 'राजर्षि' की उपाधि दी।** 13 अप्रैल, 1982 को यह अजेय क्रान्तिकारी 96 वर्ष की उम्र में हमसे बिछुड़ गए। संयोग से यह वही दिन था, जब 1915 में उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई थी।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

कविता जन्मा करती है

जब तेजी से भावों की आँधी चलती है।
आतुर होकर पीड़ा मुँह ज़ोर मचलती है।
जब तन–मन का हर रोम–रोम सिहरन से भर,
कंकर से शंकर का अभाव पूरा करने।
व्याकुल रोकर पागल–सा हँसता गाता है।
अज्ञात खड़े प्रिय को आवाज़ लगाता है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
सब माँ की प्रसव वेदना से तो परिचित हैं।
कवि भी ऐसे ही पीड़ा का शिकार होता।
मूर्च्छना मचलती ही रहती है प्राणों में।
उसका हर तार–तार झंकृत सितार होता।
जब दर्द अधिक बढ़ता है कवि चिल्लाता है।
अफसोस निकट कब कोई उसके आता है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
जब दुनिया सोती है अपनी ही मस्ती में।
कवि माँ बनकर भावों को रक्त पिलाता है।
जिनकी बस्ती देखते–देखते उजड़ गई,
उन गूँगे भावों को वाणी दे जाता है।
प्यासी आँखों को आँसू की गंगा देकर,
आँचल में लेकर मोती–सा दुलराता है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
दिल में छाया होता जब गहरा अंधकार।
नित नए– नए भूचाल मचलते रहते हैं।
सपनों के ताजमहल गलते–ढलते रहते है।
अंतर में नूतन भाव बिछलते रहते हैं।
तब प्राणों में आवाज कहीं से आती है।
मैं मरा जा रहा और न अब सह पाउँगा।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
जब माँगे प्यार 'मनीषी' नफरत मिलती है।
दरवाजे से कोई दुत्कारा जाता है।
'काली' आता 'विद्या' कपाट जड़ देती है।
'तुलसी' जब 'रत्ना' से फटकारा जाता है।
सपने कच्चे ही मिल जाते हैं धूली में।
इच्छाओं को लटकाया जाता सूली पे।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।
ऐसे में ही तो कविता जन्मा करती है।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट, सैक्टर –92,
नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335

आर्यसमाज, सैक्टर-9, पंचकूला में नौ लोग वैदिक धर्म में दीक्षित

आर्यसमाज सेक्टर 9 पंचकूला की यज्ञवेदी पर आर्यसमाज तथा धर्मजागरण समन्वय मंच के सामूहिक प्रयासों से एक ही परिवार के, जो पूर्व में मुस्लिम गूजर थे, नौ सदस्यों (जिनके नाम हैं साधुराम, करमते वर्तमान में कर्मवती देवी, समीर, बॉबी, प्रवीण, साहिल, नरगिस वर्तमान में सुमन, जरीना वर्तमान में रिया, इमरान वर्तमान में अमन) का सामूहिक शुद्धि करण कर उन्हें सत्य सनातन वैदिक धर्म में दीक्षित किया गया।

यज्ञ आर्यसमाज के सुयोग्य धर्माचार्य जयवीर वैदिक जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ जिसमें सम्पूर्ण परिवार का अभिनंदन कर वैदिक धर्म की विशेषताओं को समझाते हुए बताया गया कि परम सौभाग्यशाली होते हैं वे लोग जो अन्य मत में रहते हुए भी सत्य सनातन वैदिक धर्म में दीक्षित होते हैं।

दीक्षित परिवार ने संकल्प लिया कि अब हम इस समाज के साथ घनिष्ठता के साथ जुड़ अपने आगामी जीवन में वेदानुसार आध्यात्मिक उन्नति करेंगे।

धर्माचार्य ने कहा–शुद्धि ही आने वाली पुश्तों की रक्षा करने में सक्षम है। अपने भविष्य की रक्षा के लिए शुद्धि कार्य को तन, मन, धन से सहयोग करें।

डी.ए.वी. ऊना (हिमाचल) 'पृथ्वी बचाओ पर्यावरण बचाओ'

डी.ए.वी. सेनटेनरी पब्लिक स्कूल, ऊना में छात्रों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता और जिम्मेदारी की भावना पैदा करने के उद्देश्य से ***'पृथ्वी बचाओ, पर्यावरण बचाओ'*** की पहल को अपनाकर आने वाली पीढ़ी को हरित, स्वच्छ और सुरक्षित पृथ्वी का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

विद्यालय में हवन यज्ञ का आयोजन कर पर्यावरण को शुद्ध बनाने का संकल्प लिया गया। "छात्रों को बताया गया कि हवन यज्ञ से वायुमंडल में उपस्थित हानिकारक सूक्ष्म जीवों का नाश होता है। वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। वैदिक मंत्रों के उच्चारण से वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है।"

प्लास्टिक मुक्त अभियान चलाकर छात्रों को प्लास्टिक से बनी चीजों का बहिष्कार करने के लिए प्रेरित किया गया। जल संरक्षण अभियान में छात्रों की सहभागिता को सुनिश्चित किया गया।

पर्यावरण बचाने हेतु जागरूक रैली एनसीसी व एन.एस.एस के छात्रों द्वारा निकाल कर आम जन को अधिक पेड़ लगाने का संदेश दिया जाता है।

डी.ए.वी. बी.आर.एस. नगर, लुधियाना में गुरु-पूर्णिमा पर्व

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बी. आर. एस. नगर, लुधियाना के प्रागंण में गुरु पूर्णिमा के अवसर पर विशेष हवन का आयोजन किया गया तथा पी.पी.टी. के द्वारा छात्रों को गुरुओं के सामाजिक योगदान के बारे में विस्तार से बताया गया। इस अवसर पर मुख्य यजमान ने अपने वक्तव्य में कहा–"गुरु का स्थान हमारे जीवन में माता–पिता के समान होता है। वह हमें अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाते हैं। अतः छात्रों को अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा व्यक्त करनी चाहिए।"

उन्होंने बताया कि गुरु–पूर्णिमा भारतीय संस्कृति में गुरु के सम्मान का पर्व है। प्रति वर्ष आषाढ़ मास की पूर्णिमा को इसे मनाया जाता है। यह धार्मिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण पर्व है जो गुरु–शिष्य परंपरा की याद दिलाता है।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून में वेदारम्भ संस्कार

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, देहरादून में उपनयन व वेदारम्भ संस्कार कर 9 ब्रह्मचारियों से गुरुकुल प्रारम्भ किया। गुरुकुल के आचार्य रवीन्द्र कुमार शास्त्री, आचार्य ताराचन्द जी आचार्या अन्नपूर्णा जी के सारगार्भित उपदेश हुए। उन्होंने ब्रह्मचारियों को यज्ञोपवीत का महत्व बताया और कहा–भगत सिंह जी, सरदार अर्जुन सिंह जी के भी यज्ञोपवीत संस्कार हुए थे। हमारा उद्देश्य ईश्वर की सच्ची भक्ति व मानवता की रक्षा करना है। मानव, ज्ञान व विद्या से ईश्वर को पा सकता है, अविद्या व अज्ञान से दुःखों में फँसता जाता है।

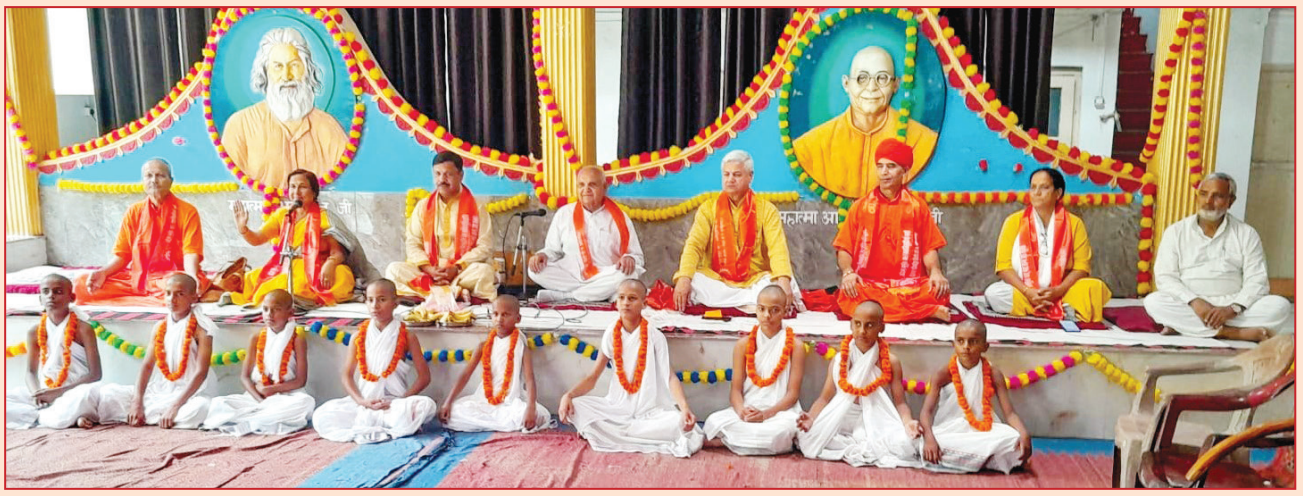

आचार्य धनंजय जी ने गुरुकुलों के महत्त्व पर प्रकाश डाला। गुरुकुलों में ही सच्ची आध्यात्मिक व भौतिक विद्या प्राप्त हो सकती है जो कि सर्वांगीण विकास करने में समर्थ हैं। सोलह संस्कारों से मानव जीवन का उद्देश्य सफल होता है।

इस अवसर पर स्वामी सत्यव्रतानन्द जी ने बच्चों को सोलह संस्कारों का महत्त्व समझाया।

सत्यार्थी मुनि जी ने ब्रहमचर्य का महत्त्व बड़ी ही रोचक शैली में बच्चों को समझाया। स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने महर्षि दयानन्द की विचार शक्ति को समझाते हुए बच्चों को उनके पदचिह्नों पर चलने की प्रेरणा दी और कहा हम ईश्वर की समान सन्तान हैं, हम सब आर्य हैं। श्रीमती मीना श्री पंवार एवं पं. वेद वसु शास्त्री जी के भजनों ने भक्तिरस प्रवाहित किया।

अन्त में शान्ति पाठ के साथ वेदारम्भ व उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ।

डी.ए.वी. कोटखाई (हिमाचल) में हुआ पौधारोपण

डी.ए.वी. शताब्दी पब्लिक स्कूल, कोटखाई ने विश्व पर्यावरण दिवस के सन्दर्भ में पौधारोपण का अभियान चलाया। विद्यालय परिसर को सुन्दरता बढ़ाने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के पौधों का रोपण किया गया। छात्रों ने इस गतिविधि में उत्साहपूर्वक भाग लिया। प्रातःकाल अनेक बच्चे हाथों में सेब, देवदार, फूल तथा सजावटी पौधे लेकर विद्यालय आए।

यज्ञ से कार्यक्रम आरम्भ हुआ जिसमें छात्रों और अध्यापकों ने भाग लिया।

प्राचार्य संजीव शर्मा ने अपने हाथों पौधा लगाकर कार्यक्रम का आरम्भ किया।

इस अवसर पर्यावरण के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से एक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। छात्रों ने पर्यावरण विषयक सरोकारों पर आधारित विचार रखे।

प्राचार्य महोदय ने पर्यावरण दिवस की शुभकामनायें दीं और कहा–मानव ने प्रकृति का अनावश्यक दोहन कर पर्यावरण को कितना नुकसान पहुँचाया है। यज्ञ और वन संवर्धन से पर्यावरण को शुद्ध किया जा सकता है और प्रकृति की हुए नुकसान की भरपाई की जा सकती है।

डी.ए.वी. पालमपुर (हिमाचल) में गुरु पूर्णिमा के अवसर पर यज्ञ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पालमपुर, (हि.प्र.) में 'गुरु पूर्णिमा' के अवसर पर यज्ञ का आयोजन किया गया। इसमें विद्यालय के लगभग 300 छात्र–छात्राएँ, अध्यापक तथा विद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. वी.के. यादव उपस्थित रहे।

यज्ञ का आरंभ ईश्वर स्तुति उपासना मंत्रों से हुआ। गायत्री मंत्र, पंचघृत आहुतियाँ मंत्र, दैनिक यज्ञ मंत्रों के साथ पूर्णाहूति, यज्ञ प्रार्थना व शांति पाठ के साथ यज्ञ का समापन किया गया।

यज्ञ के उपरांत प्रधानाचार्य डा. वी. के. यादव ने सभी को गुरु पूर्णिमा की शुभकामनाएँ दीं तथा गुरु की महत्ता बताते हुए जीवन में नैतिक मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दी।

डॉ. यादव ने बच्चों का ध्यान ऋषि दयानन्द के द्वारा दण्डी स्वामी विरजानन्द के साथ बिताये जीवन का हवाला देते हुए गुरु और शिष्य के संबन्धों पर प्रकाश डाला और अध्यापकों तथा छात्रों को उनके कर्त्तव्य से अवगत कराया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**